CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

१२०१

दंडी स्वामी विमलानन्द सरस्वती

राजगुरुमठः
शिवाला घाट
वाराणसी
१६.१०.२३

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

ublic Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-M

Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation,

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

# ओंकार का अर्थ-चिन्तन

( ओंकार की अर्थ-चिन्तन साधना और तत्व-दर्शन
की सरल व्याख्या )

*

लेखक :

डॉ० चमनलाल गौतम

रचयिता:—ओंकार सिद्धि. ओंकार है शान्ति का द्वार, ओंकार है स्वर्ग का द्वार, ओंकार शक्ति के चमत्कार, हिन्दू एकता का प्रतीक—ओंकार, ओंकार से रोग निवारण, तनाव नाश की ओंकार साधना आदि।

*

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब, वेदनगर,
बरेली—२४३००३ (उ. प्र.)

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

प्रकाशक :

**डा. चमन लाल गौतम**

संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब, वेद नगर
बरेली–२४३००३ (उ. प्र.)
फोन : ४२४२

*

प्रथम संस्करण :
सन् १९८३

*

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

*

मुद्रक :
**शैलेन्द्र वी० माहेश्वरी**
नव ज्योति प्रेस,
भीकचन्द मार्ग, मथुरा ।

*

मूल्य :
चार रुपये पचास पैसे मात्र ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

# भूमिका

योग विद्या के अनुभूति मूलक, वरिष्ठतम, अध्यात्म वेत्ता वैज्ञानिक महर्षि पतंजलि ने अपने समग्र जीवन की साधना के आधार पर योग दर्शन (१।२७) में लिखा है कि उस ईश्वर का नाम 'प्रणव' (ॐ) है और प्रणव का जप और अर्थ-चिन्तन से समाधि लाभ होता हैं। अन्य ऋषियों ने भी समाधि अवस्था में अनुभव किया कि मूल प्रकृति और ईश्वर का जिस स्थान पर सम्बन्ध है, वहाँ से एक ॐ ध्वनि निरन्तर निकलती रहती है, वह ध्वनि ही शक्ति रूप में परिणत होकर संसार के अनेक कार्यों को पूर्ण करती है। इस स्वयं नि.सृत ध्वनि को योगी लोग ध्यानपूर्वक समाधि द्वारा सुनते और ब्रह्मानन्द का आस्वादन करते हैं। इसी ध्वनि को, ईश्वर के स्वयं घोषित नाम को ओंकार कहते हैं।

महर्षि पतंजलि का अभिप्राय यह है कि प्रणव का जप ही योग का सर्व प्रधान एवं सर्वश्रेष्ठ साधन है। प्रणव का जप और चिंतन करने से चित्त चञ्चलता रहित हो जाता है। अर्थ की भावना के साथ लिए जाने वाले नाम जप में चित्त की गति के लिए एक निश्चित मार्ग विस्तृत होने लगता है जिससे स्थिरता लाने में सहायता मिलती है। उसके फलस्वरूप मन अपनी चंचलता छोड़ने लगता है। महर्षि के यह शब्द भी गहन अनुभूतियों की अभिव्यक्ति करते हैं कि प्रणव के जप और चिन्तन से सारी बाधाओं का अभाव हो जाता है, नवीन चेतना का जागरण होता है, अन्तरात्मा के स्वरूप का ज्ञान होता है। ईश्वर के जिन गुणों की भावना करके उपासक ध्यान चिन्तन करता है, उन्हीं गुणों का उपासक में समावेश होता है। इस साधना से वह योग की अन्तिम सीढ़ी समाधि तक पहुँचने की सामर्थ्य प्राप्त करता हैं।

—चमनलाल गौतम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

# विषय सूची


**१. प्रणव को जानने वाला ही सर्वज्ञ है ।** ५

ओंकार ही 'ब्रह्म' है, आत्मोत्थान का साधन—ओंकार, सुप्रेरणाप्रद-ओंकार ।

**२. अर्थ-चिन्तन का महत्व ।** १६

शब्दार्थ ज्ञान की अनिवार्यता, अर्थ ज्ञान न होने से हानि ।

**३. प्रणव और ओंकार में अभेद ।** २१

निराकार का रूपान्तरण, वातावरण में उद्वेलन, प्रणव ही ओंकार है ।

**४. प्रणव का अर्थ विचार ।** २९

सर्व मंत्रात्मक प्रणव, प्रणव ही पर ब्रह्म हैं, ब्रह्माण्ड प्रकृति में प्रणव रूप प्रकम्पन, भोग-मोक्ष का दाता-प्रणव, सब कुछ प्रणव से प्रकाशित ।

**५. प्रणव के पच्चीस अर्थ ।** ३९

प्रणव की व्युत्पत्ति, अर्थ और उनकी व्याख्या, पच्चीस विभिन्न अर्थों की व्याख्या ।

**६. ओंकार का अर्थ-विचार ।** ५५

ओंकार की अनुकृति-संसार, प्राण रूप से प्रतिष्ठित-ओंकार, एकाक्षर ब्रह्म ही ध्येय है ।

**७. ओंकार के पच्चीस अर्थ ।** ८२

ओंकार की व्युत्पत्ति, 'अ', 'उ', 'म', के अर्थ, पच्चीस विभिन्न अर्थों की व्याख्या ।

**८. वर्ण-तत्व-दर्शन ।** १०८

वर्णमाला और ओंकार, ओंकार का प्लुत उच्चारण, ओंकार का त्रिविध प्रकर्ष ।

**९. ओंकार के दस प्रमुख नाम ।** ११४

नाम और उनकी व्याख्या ।

**१०. अक्षर-तत्व-दर्शन ।** ११८

आनन्द रूप अक्षर ब्रह्म, त्रिविक्रम के तीन पग-अ,उ, म प्रकृति, जीव और ईश्वर, शिव का त्रिशूल-त्रिमात्रिक ओंकार, जीवात्मा के तीन शरीर, ईश्वर के तीन रूप और त्रिमात्र ओंकार, साधना में श्रवण-मनन निदिध्यासन, अर्ध चन्द्रात्मक अर्ध मात्रा ।


RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

# ओंकार का अर्थ चिन्तन

## प्रणव को जानने वाला ही सर्वज्ञ है।

### ओंकार ही ब्रह्म है—

ॐ आप्यायन्तु ममांगानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि। सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोत्, अनिराकणरमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु। तदात्मनि निरते य उपन्निषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु ॥

"हे परमात्मदेव! मेरे सभी अंग वाणी, प्राण, नेत्र, कान, बल और समस्त इन्द्रियाँ पुष्ट हों। यह औपन्निषद् ज्ञानमय ब्रह्म सर्वरूप है, मैं इसका परित्याग न करूँ और यह ब्रह्म भी मेरा परित्याग न करे। उसके साथ मेरा या मेरे साथ उसका अटूट सम्बन्ध बना रहे। यह औपनिषद्-धर्म ब्रह्म में रत हुए मुझ में सदा विद्यमान रहे।"

मंगलाचरण में सर्व प्रथम ओम् का उच्चारण इस तथ्य की पुष्टि करता है कि वही स्मरणीय है। उसके स्मरण में ही कल्याण निहित है। इसी उद्देश्य से समस्त मन्त्रों के आदि में 'ओम्' का उच्चारण किया जाता है। वेदज्ञ, मन्त्रज्ञ, कर्मकाण्डी विद्वान् आदि सभी का यह मत रहा है कि जिस मन्त्र में ओंकार आदि नहीं लगाया जाता, वह मन्त्र कभी सिद्धि-दायक नहीं होता। भगवान् मनु का तो यह कहना है कि वेदाध्ययन के आरम्भ मे और अन्त में भी ओंकार का उच्चारण अनिवार्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-



रूप से आवश्यक है। महर्षि याज्ञवल्क्य का मत है कि 'वेदों का आदि अक्षर ओंकार ब्रह्म ही है। जो प्रणव को जानता है, वही सर्वज्ञ है। क्योंकि समस्त योग-साधनों का सार यह प्रणव ही है। इसलिये इसका जानना अत्यन्त आवश्यक है। जो इसे जान लेता है, उसे अन्य कुछ जानने की आवश्यकता नहीं रहती। मन्त्र-पाठक के पूर्व ओम् का उच्चारण आवश्यक है, क्योंकि सभी मन्त्र ओंकार से मिलकर ही फल प्रदान करने वाले होते हैं।'

ओंकार को सभी मन्त्रों के आदि में योजित करने का भी एक वृत्तान्त है—एक उपाख्यान है जो 'गोपथ ब्राह्मण' में मिलता है। उपाख्यान रोचक भी है और जानने योग्य भी। आदिकाल से ही देवताओं और दैत्यों में युद्ध होता रहा है और उन युद्धों मे प्रायः देवताओं की पराजय और आसुरी शक्तियों की विजय होती रही है। देवता जब-जब भी हारते कोई अन्य उपाय न सूझने पर परमात्मा की शरण लेते और उनकी कृपा से विजय प्राप्त कर पाते दैत्यों पर। अपने प्रमाद से ही हारते और जीतने पर पुनः प्रमाद में भर जाते। यही कारण था दैत्यों की विजय का। वे सदा सावधान रहते कि कब देवता प्रमाद में रहें और कब हम उन पर आक्रमण करें। देवता राग-रंग में व्यस्त हो जाते और असावधानी में परमात्मा को भी भूल जाते। तभी दैत्यों को उन पर आक्रमण करने का अवसर मिल जाता।

और एक बार पुनः ऐसा ही अवसर आ गया जब देवगण राग-रंग में मतवाले होकर परमात्मा को भूल गये। स्मरण रखें इस बात का कि जब कोई देवता भी परमात्मा को भूल जाय और राग-रङ्ग में लिप्त हो जाय, तब उसमें और दैत्य में कोई अन्तर नहीं रहता। क्योंकि देवता होने का मापदण्ड सात्विक गुण हैं, जब सात्विक गुणों का लोप हो जाता है, तब उसमें देवत्व कहाँ? मनुष्यों में राजसिक गुण की अधिकता होती है, वह भी यदि अपने में निहित सात्विक गुण को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant



जगा ले तो देवता हो सकता है। यदि उसका तामसिक गुण बढ़ जाता है तो वह दैत्य भी हो सकता है। इसलिए देवता, मनुष्य और दैत्य में कोई विशेष अन्तर नहीं है। मनुष्य बीच की कड़ी है उन दोनों में।

हाँ तो, अवसर मिलने पर दैत्यों ने अकस्मात् आक्रमण कर दिया देवताओं पर। वे परमात्मा को भूले हुए और प्रमाद में भरे थे। उन्हें होश नहीं था कि कहाँ क्या हो रहा है? जब दैत्यों ने आ घेरा सब ओर से तो युद्ध के मैदान में उतरे। यद्यपि बड़ी वीरता से लड़े थे, तो भी पराजित हो गये। बहुत-से देवता मारे गये, बहुत-से आहत हुए, बहुत-से मरणासन्न अवस्था में वहीं पड़े रह गये। जो बचे, वे देवराज इन्द्र के साथ भाग चले अपनी बड़ी भारी हानि करके।

किन्तु दैत्यगण उनके पीछे लगे थे—वे चाहते थे कि इस बार एक भी देवता जीवित न बचे। फिर भी बचे हुए देवता घोर जंगलों में, उनकी कन्दराओं में भूखे-प्यासे छिपे रहकर अपनी प्राणरक्षा कर पाये। जब अधिक दुःख भोग लिये तब इन्द्र को ध्यान आया परमात्मा का और तब सभी देवता प्रभु-शरण में पहुँचे और पुकारने लगे—'प्रभो! हम तो आपके परम भक्त हैं, बार-बार हमारी ऐसी दुर्दशा क्यों हो जाती है? आपसे द्वेष रखने वाले दैत्यगण विजय प्राप्त कर लेते हैं और हम वन-वन मारे फिर कर भी अपने को सुरक्षित नहीं पाते। इसलिये, हम पर कृपा करिये नाथ!'

परमात्मा बोले—'देवराज! तुम लोग जब भी प्रमाद में भर कर मुझे भूल जाते हो, तभी-तभी पराजय प्राप्त करते हो। तुम राग-रंग में डूब कर बेहोश हो और जो लोग सदा जाग्रत्—सदा सावधान रहते हैं तथा जब भी तुम्हें दुर्बल देखते हैं तभी चढ़ाई कर देते हैं।'

इन्द्र ने विनीत भाव से निवेदन किया—'भविष्य में ऐसा कभी नहीं होगा प्रभो! हम सदैव सावधान रहते हुए अपनी रक्षा-व्यवस्था को सुदृढ़

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-



रखेंगे और कभी भी राग-रङ्ग में नहीं डूबेंगे। अब कृपया हमें इसे दयनीय दशा से उबारिये।'

परमात्मा ने कहा—'तुम्हें इस दशा से तो उबारूँगा ही, किन्तु इस बार एक शर्त रखनी होगी मुझे। वह शर्त यह है कि विप्रगण जब भी किसी मन्त्र का पाठ करें तभी मन्त्र से पहिले प्रणव लगा लें। यदि वे ऐसा न करें तो देवताओं का कर्तव्य होगा कि वे प्रणव-हीन मन्त्र वाले जप, तप, यज्ञ, पूजनादि को कभी स्वीकार न करें।'

इन्द्र ने आश्वासन दिया—'शर्त स्वीकार है हमें, हम सदा ही इसका पालन करते रहेंगे। किन्तु वर्तमान परिस्थिति पर जिस प्रकार विजय पाई जा सके, वह उपाय तो कीजिये।'

परमात्मा ने कहा—'इन्द्र! मेरे सभी नामों में 'ओम्' श्रेष्ठ है। तुम सब एकत्र होकर इसका उच्चारण करते हुए—निरन्तर जप करते हुए शत्रुओं के मध्य प्रविष्ट होते चले जाओ। देखना, 'ओम्' का उच्चारण रुके नहीं, निरन्तर होता रहे तभी तुम्हारी विजय होगी। यदि बीच में कहीं भी उच्चारण रुका वहीं जीत खतरे में पड़ जायगी।'

देवताओं ने परमात्मा का आदेश शिरोधार्य कर अपने सभी साथियों को एकत्र किया और 'ओम्' का उच्चारण करते हुए दैत्य-सेना में घुसते चले गये। दैत्य हारे और वे 'ओम्' के प्रभाव से विजयी हुए।

ओंकार-सम्बन्धी यह उपाख्यान प्राचीन है। जब से परमात्मा ने मन्त्रों के आदि में 'ओम्' लगाने का निर्देश दिया, तभी से विप्रगण सभी प्रकार के मन्त्रों में 'ओम्' लगाने लगे। समस्त निगमागम शास्त्र 'ओम्' की शक्ति से ही अत्यन्त शक्तिशाली हुआ है। इसलिए 'ओम्' की महिमा अद्वितीय ही है। अनेक साधक, जब जो चाहते हैं, उसी की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant



प्राप्ति में सफल रहते हैं। क्योंकि वही अक्षर ब्रह्म या नाद ब्रह्म है, वही संसार का नियन्ता परमात्मा है। नचिकेता ने यमराज से निवेदन किया था कि 'कृपया मुझे अक्षर ब्रह्म का उपदेश दीजिये।' इस पर यम ने कहा—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥

नचिकेता के प्रति यमराज ने कहा—जिसकी व्याख्या सभी वेद करते हैं, समस्त तप (या तपस्वी) जिसकी ही चर्चा करते हैं तथा यतिगण जिसकी इच्छा से ब्रह्मचर्य धारण करते हैं, उस पद को मैं संक्षेप से बताता हूँ—वह 'ओम्' है।

गोपथ ब्राह्मण में कहा है कि 'जो व्यक्ति ओंकार को नहीं जानता, वह स्वयं को दीन, हीन, अवश और अबल मानता है। किन्तु उसे जो तत्व से समझ लेता है वह ब्रह्मबल या आत्मबल से युक्त-बलवान हो जाता है। वस्तुतः ऋग्वेद के अध्ययन काल में 'ओम्' ही ऋग्-रूप होता है, यजुर्वेद के अध्ययन में यजुः रूप तथा सामवेद के अध्ययन काल में वही साम स्वरूप है। सूत्र ग्रन्थों में सूत्र रूप ओंकार ही है। वही सब ब्राह्मण ग्रन्थों में, सभी श्लोकों में समाविष्ट है। इस प्रकार सर्वत्र प्रणव ही प्रणव है।'

## आत्मोत्थान का साधन-ओंकार—

इससे स्पष्ट है कि 'ओम्' ही आत्मोत्थान का—कल्याण-साधन का अथवा स्वर्ग या मोक्ष प्राप्ति का एक सरलतम उपाय है। ध्यानबिन्दूपनिषद् में कर्तव्य रूप से ओंकार-ध्यान की प्रेरणा दी गई है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ध्येयं सर्वं मुमुक्षुभिः' अर्थात् 'मुमुक्षुजनों को—मोक्ष या स्वर्ग चाहने वालों को 'ओम्' इस एकाक्षर ब्रह्म का ही ध्यान करना चाहिये।' ईशावास्योपनिषद् में 'ओम् क्रतो स्मर' कह कर यही स्पष्ट किया है कि 'ओम्' ही संसार का उत्पन्न करने वाला और सभी वस्तुओं का स्वामी है, इसीलिये उसी का स्मरण करो। इसका फल बताते हुए यमराज नचिकेता से कहते हैं—'एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्' अर्थात् "इस 'ओम्' अक्षर को जानने और धारण करने वाला व्यक्ति जो कुछ इच्छा करे, वही प्राप्त कर लेता है। शास्त्र का यह वचन ध्यान देने योग्य हैं—

स नो बन्धुः पाता भुवनमखिलं ये रचयति
प्रजानां संहारे पुनरपि स एवाति बलवान।
तमेकं जानीध्वं सकल सुखदं, दुःखहरण
भजध्वं हे धीराः सुमति विमला ओंहृदि सदा॥

वही हमारा बन्धु है, वही हमारा पालक है, वही अखिल विश्व का रचने वाला है। वही प्रजाओं का संहार करने वाला है। वही परम शक्ति-सम्पन्न प्रभु जानने के योग्य है। वही सब सुखों का देने वाला और दुःखों का हरण करने वाला है। हे श्रेष्ठ बुद्धि वाले धीर पुरुषो ! सदैव हृदय में ओंकार का भजन करो।

इस श्लोक में 'ओं हृदि सदा' वाक्य भी ध्यान देने योग्य है। यह वाक्य जप की ओर सकेत करता है—'हृदय में जपो ओंकार को'। जप के तीन प्रकार प्रसिद्ध हैं—जोर-जोर से उच्चारण करते हुए जप करना, यह निकृष्ट है, मन्द स्वर से जप करना, यह मध्यम है और तीसरा है मानसिक रूप से जप करना। यही हृदय में जप करना या स्मरण करना है। मुख बन्द रहे, वाणी भी बाह्य रूप से

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran



बन्द रहे, ओष्ठ भी न हिलें, केवल मानसिक रूप से जप चलता रहे। क्योंकि ध्यान तो मन से ही होता है। मन को एकाग्र बनाओगे तो ही मानसिक जप भी फलदायक होगा। मन एकाग्र नहीं, वह दूर की छलाँग भर रहा है और हम यहीं बैठे हैं तो बड़ी कठिनाई होगी।

स्मरण रहे कि ओंकार-जप का अधिकार सभी को है—इसमें जाति की बाधा नहीं, आयु की बाधा नहीं, देश-काल की भी बाधा नहीं। जब समय मिले ओंकार का स्मरण कर सकते हो। बैठे हो तो भी, चल रहे हो तो भी, लेटे हो या भोजन कर रहे हो तो भी शास्त्र का स्पष्ट निर्देश है—

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्याय योनयः येऽपि स्युः।
आश्रित्य ओंकार नूनं सर्वे यान्ति परां गसिम्॥

स्त्री, वैश्य, शूद्रादि एवं पाप-योनि वाले भी जो कोई हों, वे सभी ओंकार का आश्रय लेकर अवश्य ही परमगति रूप मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं।

अन्यत्र कहा है कि ओंकार का स्मरण ही कर्तव्य है, उसी से समस्त श्रेयों की सिद्धि सम्भव है। मत देखो कि रात्रि है या दिन, प्रातःकाल है या मध्याह्न, अथवा सायंकाल—

सुखे वा दुःखे वा परिषदि नृणां वाति विजने
गृहे वा बाह्ये वा गिरि-सुशिखरे वा सुपुलिने।
दिने वा रात्रौ वा उषसि दिवसान्तेऽथ रमणं
भजध्वं हे धीराः सुमति विमला ओंहृदि सदा॥

सुख में या दुःख में, जनाकीर्ण स्थान में या निर्जन स्थान में, घर में अथवा बाहर, सुन्दर पर्वत-शिखर पर अथवा नदी के रमणीक तट पर, दिन में अथवा रात्रि में, प्रातः काल में अथवा सायंकाल में, हे श्रेष्ठ बुद्धि वाले धीर पुरुषो! तुम सदा 'ओम्' का ही भजन करो।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



## सुप्रेरणाप्रद ओंकार—

वस्तुतः ओंकार ही मनुष्यों को सुबुद्धि देता है, वही दोषों और दुर्गुणों को दूर करता है, वही उत्कर्ष का मार्ग सुझाता है, वही चित्त को स्वच्छ बनाता है, वही अन्तःकरण को शुद्ध करता है, वही योग-साधन जुटाता है, वही मार्ग के विघ्नों को दूर करता है, वही कुशलता का वहन करता हैं। वही सबका नियन्ता, सबका पालक, सर्वज्ञ और सर्वगत है। वही सत्-चित्-आनन्द स्वरूप ओंकार सदैव उपासना के योग्य है।

जो ओंकार के ध्यान में लीन रहता है, वही योगी है, जो ओंकार को तत्वपूर्वक जानता है वही ज्ञानी है, यथा—

तैलधाराभिवच्छिन्न दीर्घघँटानिनादवत्।
उपास्यं प्रणवस्याग्रं यस्तं वेद स वेदवित्॥

जो मनुष्य एक पात्र से दूसरे पात्र में निरन्तर गिरने वाली तैल-धारा के समान ही उपासनीय प्रणव का ध्यान करता है, वस्तुत. वेदों का ज्ञाता तो वही है।

ओंकार ही सब रसों का आविर्भाव करने वाला है। उसी के द्वारा करुणा, दया, अनुग्रह, क्रोध, रोष, ईर्ष्या आदि भावानुभावों में व्यक्त होने वाली ध्वनि निकलती है। शिव महिम्न स्तोत्र में भी ओंकार की महिमा अद्वितीय ही मानी गई है। वस्तुतः यह एकाक्षर ब्रह्म वर्णनातीत और अपार शक्तियों से सम्पन्न है। इसके गुणों का गान महासागर की अनन्त जलराशि को स्याही और अश्वत्थ वृक्ष को लेखनी बना कर भी लिपिबद्ध किया जाना सम्भव नहीं है।

संसार की उत्पत्ति में ओंकार ही ब्रह्मरूप से कारण होता है, वही विष्णुरूप से पालन करता है, वही रुद्र रूप मे प्रलय कर देता है, इसी-

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran



लिये शास्त्रों में इसकी महान शक्ति का स्थान-स्थान पर उल्लेख मिलता है। शास्त्र का ही वचन है—

ॐ इत्येकाक्षरध्यानात् बिष्णुर्विष्णुत्वमाप्तवान्।
ब्रह्मा ब्रह्मत्वमापन्नः शिवतामभवत् शिवः॥
स्मरणात् कीर्तनाद्वापि श्रवणाच्च जपादपि।
ब्रह्म तत्प्राप्यते नित्यमोमित्येतत्परायणम्॥

"ॐ रूप एकाक्षर ब्रह्म के ध्यान से विष्णु को विष्णुत्व की प्राप्ति हुई, ब्रह्मा को ब्रह्मत्व की और शिव को शिवत्व की उपलब्धि हुई। ओम् के नित्यप्रति स्मरण, कीर्तन, श्रवण तथा जप करते रहने से परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति सहज ही हो जाती है।"

इससे यह भी स्पष्ट होता है कि सभी देवताओं में जो-जो शक्ति विद्यमान हैं, वे सब एक मात्र ओंकार से ही उद्भूत हुई हैं। क्योंकि 'सर्वदेवात्मकं शान्तं तत्वमेकरसायनम्' अर्थात् 'वही सर्व देवात्मक है, वही परम शान्त और रसायन रूप एक तत्व है। इसलिए मुमुक्षु-जनों के लिये एक मात्र उसी अक्षर ब्रह्म की उपासन करनी चाहिये।

साधनाएं अनेक प्रकार की हैं—अनेक देवी-देवताओं से सम्बन्धित हैं, किन्तु सभी में कुछ न कुछ कठिनाइयाँ बाधा स्वरूप उपस्थित हो जाती है। एक ओंकार-साधना ही ऐसी हैं, जिसका मार्ग बहुत सीधा और सरल है। यही कारण है कि कोई भी सम्प्रदाय ओंकार का विरोध नहीं करता। कृष्ण-भक्त, राम-भक्त, विष्णु-भक्त, शिव-भक्त, शक्ति के उपासक आदि कोई भी हों, परस्पर मत-भेद रखते हुए भी ओंकार के विषय में एकमत हैं। ओंकार को जितना निर्गुण उपासक मानते हैं, सगुण उपासक भी उससे कम तो नहीं ही मानते।

और तो और—हिन्दू एवं आर्यों से भिन्न मत वालों ने भी ओंकार को किसी न किसी रूप में ग्रहण किया हुआ है। मुस्लिम धर्मावलम्बी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



नमाज में जिस 'आमीन' शब्द का प्रयोग करते है, वह ओम् का ही रूपान्तरण मात्र है। ईसाई भी प्रार्थना के अन्त में 'अमेन' शब्द का उच्चारण करते हैं, वह भी प्रकान्तर से ओम् ही है। हम देश-भेद से एक ही शब्द के अनेक रूपान्तरण देखते हैं, इसलिये ओम् का 'आमीन' या 'अमेन' हो जाना भी उसी रूपान्तरण का एक प्रकार ही हो सकता है।

वस्तुत: 'ओम्' किसी भाषा विशेष का शब्द नहीं है। वह न तो संस्कृत भाषा का है, न संस्कृत वर्णमाला में उसका कहीं स्थान है। संस्कृत भाषा का तो इसलिये समझा जाता है कि संस्कृतज्ञों ने उसे विशेष रूप से जाना और अपना लिया। यदि तात्विक दृष्टि से देखें तो वह शुद्ध प्राकृतिक शब्द है और स्वयं ही व्यक्त हुआ है। इसलिये यदि उसे मानव स्वभाव का मूल मन्त्र माने तो कुछ अत्युक्ति नहीं समझी जा सकती।

## ओंकार ही सर्वत्र एवं सर्वगत है—

इस प्रकार ओंकार सर्वत्र है, सर्वगत है, सर्वज्ञ है और सभी का है। मनुष्य मात्र का ही नहीं प्राणी मात्र का है। शिशु उत्पन्न होते ही रोता है, उसके रोने में जो नाद है वह ओंकार का है। इसलिए यदि कोई शिशु जन्म लेते ही नहीं रोता तो परिवार वाले चिन्तित होते हैं तथा दाई या नर्स उसे रुलाने का प्रयत्न करती है। बड़े होने पर जब वह अन्य प्रकार के शब्द करता या बोलता है, तब भी उसमें जो नाद होता है, वह ओम् का ही होता है। संगीत, काव्य अथवा क्रोधपूर्वक कर्कश स्वर में भी वही ओंकार है और मधुर स्वर में भी। वही सबका आश्रय स्थान है। अमृतनादोपनिशद् का कथन है—

ओंकाररथमारुह्य विष्णुं कृत्वाऽथ सारथिम्।
ब्रह्मलोक पदान्वेषी रुद्राराधन तत्परः।
तावद्रथेन गन्तव्यं यावद् रथ पथि स्थितः॥

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran



ओंकार रूप रथ में बैठ कर भगवान् विष्णु को सारथि बनावे और ब्रह्मलोक के यथार्थ पद का अन्वेषण करते हुए भगवान् रुद्र की उपासना करे। उस रथ के द्वारा तब तक यात्रा करता रहे, जब तक कि गन्तव्य स्थान पर-लक्ष्य पर न पहुंच जाय। अर्थात् अभीष्ट पूरा न हो जाय।

ओंकार की उपासना कब से चली ? यदि इसका इतिहास जानना है तो श्रीमद्भागवत से जानो। उसमें सूतजी शौनक जी के प्रति कहते हैं—'आदौ कृतयुगे वर्णो नृणां हंस इति स्मृतः' अर्थात् 'प्रणव रूप हंस (परमात्मा) की उपासना मनुष्यों में सत्युग के आरम्भ से ही होती चली आ रही है।' उन्होंने आगे कहा कि 'जब परमेष्ठी ब्रह्मा ने अपनी चित्त वृत्तियों का निरोध किया तब उनके हृदय में नाद सुनाई दिया। उन्हें उस नाद का अनुभव तभी हुआ, जब उन्होंने अपनी चित्तवृत्तियों को अविचल बना लिया। योगीजन जिसकी उपासना अपने सभी मलों (वासनाओं, दुस्संस्कारों) का शोधन करके मोक्ष प्राप्त करते हैं। वही नाद अ, उ, म इन तीन अक्षरों से सम्पन्न ओंकार रूप में व्यक्त हुआ था। हे शौनक ! मूल रूप में वही ओंकार अव्यक्त और स्वराट् है। वही परमात्मा का प्रतीक है वस्तुतः परब्रह्म परमात्मा का साक्षात् वाचक ओंकार ही है। अन्य सभी मन्त्रों, उपनिषदों और वेदों का सनातन बीज भी वही है। अपने मङ्गलाचरण के अन्त में ओंकार ब्रह्म को नमस्कार कर उसके अर्थ चिन्तन पर विचार आरम्भ करेंगे—

ओंकार विन्दु संयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः॥

———

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

# अर्थ-चिन्तन का महत्व

## शब्दार्थ ज्ञान की अनिवार्यता–

किसी भी मन्त्र का, किसी भी वाक्य का, किसी शब्द का अर्थ-ज्ञान बहुत आवश्यक है। अर्थ-ज्ञान के बिना उसके उच्चारण से कोई भी विशेष लाभ नहीं हो पाता। योग-दर्शन के समाधिपाद में सत्ताईसवें अट्ठाईसवें सूत्र हैं––'तस्य वाचकः प्रणवः' और 'तज्जपस्तदर्थभावनम्' क्रमशः इनके अर्थ हैं––'उस ईश्वर का नाम प्रणव है' और 'उस प्रणव का जप करने अर्थ विचारने से समाधि-लाभ होता है। अन्य शास्त्रीय वचन हैं––

सार्थ भावना यो जपति भवति तन्मयं तथा।
क्षिप्रं समाधिमाप्नोति ओंकाराय नमो नमः॥

'अर्थ पर विचार करते हुए जो साधक प्रेम भाव से ओंकार का जप करता है और उस जप में इतना तन्मय हो जाता है कि उसे अन्य किसी विषय का होश नहीं रहता, वह शीघ्र ही समाधि अवस्था को प्राप्त हो जाता है। उस ओंकार ब्रह्म को बारम्बार नमस्कार है।'

यदि आप किसी शब्द का अर्थ नहीं जानते तो अपने वार्तालाप में उसका गलत प्रयोग कर सकते हैं और गलत प्रयोग करते हैं किसी शब्द का तो उसका अर्थ भी गलत समझा जा सकता है। कभी-कभी देखते हैं कि जो लोग अंग्रेजी नहीं जानते वे अपने अनजानेपने को छिपाने के लिये कभी-कभी अपनी बात-चीतों में, अपने वाक्यों में अंग्रेजी का कोई शब्द डाल ही देते हैं, जिससे कि दूसरों पर उनके अंग्रेजी जानने

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran



की धाक जमी रहे। इससे कभी-कभी लज्जित होने का अवसर भी आ जाता है उनके सामने।

एक सज्जन सुना रहे थे अपने एक परिचित की बात, जिसने अपने किसी मित्र की प्रशंसा में प्रयोग किया 'क्लैवर' शब्द जिसका अर्थ होता है चालाक, होशियार आदि। प्रशंसा के रूप में प्रयोग किया गया 'क्लैवर' उनकी मित्रता में दरार डालने वाला सिद्ध हुआ। उनके मित्र ने अर्थ लगाया कि 'यह प्रकारान्तर से मुझे बेईमान कह रहे हैं, जब कि उसने उस शब्द का प्रयोग किसी बुरे अर्थ में नहीं किया था।

शायद आपने सुना हो किसी नेत्रहीन का नाम 'नैनसुख'। ऐसे नाम बिना अर्थ पर ध्यान दिये हुए रख दिये जाते हैं। जरा ध्यान दें नैन-सुख शब्द के अर्थ पर—जिसकी आँखें सुन्दर स्वस्थ हों, वही नैनसुख कहलाने का अधिकारी है। जिसके पास आँखे नहीं, जो अन्धा है, उसे 'नैनसुख' कहने का अर्थ उसकी हँसी उड़ाना हीं है।

और भी अनेक प्रकार के नाम मिलते हैं—किसी बुद्धिहीन को कह दें बुद्धसेन या बुद्धदेव, किसी क्रोधी मनुष्य का नाम रख दें प्रशान्त, जिसने कभी अयोध्या नहीं देखी, उसका नाम रख दें अयोध्या, तो यह विसंगतियाँ होंगी। यदि इन विसंगतियों से बचा जा सके, तो यह एक अच्छी बात होगी। क्योंकि इन विसंगतियों का प्रभाव सूक्ष्म रूप से किसी न किसी रूप में प्रतिकूल पड़ सकता है।

संस्कृत न जानने वाले व्यक्ति जब कोई धार्मिक अनुष्ठान करने बैठते हैं, तब अनुष्ठान कराने वाला पण्डित मन्त्र बोलता है और कभी-तो स्वयं ही यजमान के कर्तव्य का भी निर्वाह कर देता है। उस समय यजमान नहीं जानता कि बोले जा रहे मन्त्र का अर्थ क्या है? पण्डित कहता है कि अमुक उपास्य का ध्यान करो तो उसने चित्र आदि के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



द्वारा उसका जो रूप देखा या ग्रन्थों में जिस रूप का वर्णन सुना उसके अनुसार ध्यान करने का प्रयत्न तो करने लगा, किन्तु आवश्यक नहीं कि मन्त्र के वर्णन से चित्र के शृङ्गार का मेल मिल ही जाय। इस प्रकार मन्त्र में कुछ और होता है तथा ध्यान में कुछ और—भावना में कुछ और। इसी प्रकार पण्डित भी जल्दी से अनुष्ठान कराने की दृष्टि से अक्षत, गंध, धूप, दीप, जल, नैवेद्य आदि चढ़ाने का निर्देश बड़ी तीव्रता से देता रहता है और जब देखता है कि यजमान को असुविधा हो रही है, उस जल्दी से तो जल्दी न करने की अपेक्षा यही ठीक समझता है कि स्वयं ही अक्षत, गन्धादि चढ़ा दे। अब अनुमान लगाइये कि उस प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान का, पूजन-ध्यान का क्या फल हो सकता है ?

इसीलिये कुछ ऋषियों की, विद्वानों की यह मान्यता रही है कि जो भी कर्म करो स्वयं करो, समझ पूर्वक करो। किसी विद्वान् के निर्देशन में तो करो, किन्तु पूर्णरूप से उस पर निर्भर न रहो। मुख से जो बोलते हो उसका अर्थ समझो ठीक तरह से, अन्यथा अनिष्ट भी हो सकता है। यदि अर्थ समझोगे तो उच्चारण शुद्ध होगा, क्योंकि अर्थ की समझ अन्वय की समझ भी उत्पन्न कर देती है। अन्वय आता है तो सन्धि-विच्छेद भी आ जाता है।

मन्त्र का अर्थ-ज्ञान हमें यह भी बता देता है कि हमारे जो भाव हैं, हमारा जो उद्देश्य है, मन्त्र उसके अनुकूल है या नहीं ? यदि कोई मन्त्र अनुकूल न हो और हम उसका जप करने लगें अथवा मन्त्र अनुकूल होते हुए भी उसके उच्चारण में हमसे अशुद्धि हो जाती हो, तब भी उससे कुछ लाभ नहीं हो सकता।

## अर्थज्ञान न होने से हानि—

और जब उच्चारण में कहीं विपरीतार्थक ध्वनि निकलने लगी तब तो उद्देश्य में ही हानि हो गई। मान लीजिये कि एक वाक्य है 'सर्वं-

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran



धर्म' और हम उसके स्थान पर बोलने लगें 'सर्वाधर्म' तो यह विपरीतार्थक वाक्य कथन का उद्देश्य ही बदल देगा। क्योंकि वहाँ था सर्व-धर्म और उसका हो गया सर्व-अधर्म। हो गई न उल्टी बात? कहाँ धर्म और कहाँ अधर्म? जैसे तीन का मुख रहता है पीछे की ओर, तो छः का रहता है आगे की ओर। उनके मूल्यांकन मे भी दुगुना अन्तर।

एक पुरानी बात याद आ गई। देवी के एक भक्त थे—विद्वान् भी और परिश्रमशील भी। जप करने बैठते तो निरन्तर करते रहते घण्टों तक। उन्होंने अनेक अनुष्ठान किये थे—तान्त्रिक अनुष्ठान, आरम्भ में उनके चेहरे पर तेज भी आया, किन्तु बाद में वह तेज तामसी प्रवृत्ति में बदल गया। जो पहिले सौम्य पण्डित दिखाई देते थे, वे तान्त्रिक होने पर भयंकर बन गये। लोगों से रूखा बर्ताव तो उनकी आये दिन की बात हो गई, किन्तु घर पहुँच कर तो उनका रूप ही बदल जाता। बाहर के लोगों से रूखे व्यवहार से अधिक कुछ भी नहीं कर सकते थे। किन्तु घर के तो वे बादशाह थे ही। पत्नी-बच्चों को मारते रहते। बाहर का क्रोध घर में ही उतार पाते और एक दिन तो ऐसा क्रोध उतारा कि पत्नी बेचारी कूच ही कर गई संसार से। कहते थे लोग कि उनके मन्त्रोच्चारण में गलती के कारण हो विपरीत फल हुआ उनके एक सहकारी पण्डित ने एक बार चर्चा के मध्य बताया कि 'मैंने उनके उच्चारण में अशुद्धि के विषय जब बताने का प्रयत्न किया, तब वे मुझ पर ही बरस पड़े। उस दिन वह इतने रुष्ट हुए कि एक बार तो ऐसा लगा कि कहीं डण्डा ही न मार दें। इसलिये दूसरे दिन से उनके पास जाना ही छोड़ दिया।'

ऐसी और भी अनेक घटनाएँ सुनी गई हैं कि जो तान्त्रिक अपने अनुष्ठान में सफल नहीं होते, वे कुछ विक्षिप्त जैसे प्रतीत होने लगते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



किन्तु उनकी असफलता में यह दो कारण ही मुख्य होते हैं—(१) मन्त्र का अर्थ न समझना, (२) मन्त्र का अशुद्ध उच्चारण। कुछ गौण कारण भी हैं, जैसे कि आचरण में अशुद्धता, अब्रह्मचर्य, पेटूपन आदि। अनुष्ठान के नियमों का न मानना भी उसकी असफलता में एक कारण होता है। किन्तु विपरीत फल के कारण तो वे दो ही हैं। यदि उन दो कारणों के निवारण पर ध्यान दिया जा सके तो अवश्य ही सफलता की ओर बढ़ा जा सकता है।

इन सब बातों को दृष्टिगत रखने से यह बहुत स्पष्ट हो जाता है कि हम जब कभी भी, जिस किसी मन्त्र का उच्चारण करें, उसके अर्थ पर विचार कर लें और उच्चारण भी शुद्ध करें। बिना इन दोनों योग्यताओं से पूरे हुए अनुष्ठान का आरम्भ नहीं करना चाहिये।

कोई शंका करे कि यहाँ तो ओंकार का प्रसंग है, किसी मन्त्र का नहीं, तब इन बातों की क्यों आवश्यकता हुई? इसके सम्बन्ध में यह कहना अनुचित न होगा कि अन्य मन्त्र तो मन्त्र ही हैं, जबकि ओंकार है महामन्त्र। यह बीजभूत है सभी मन्त्रों का। अन्य मन्त्र भी इसी को प्राण रूप से ग्रहण करके प्राणवान होते हैं। इसलिये जो बातें अन्यान्य मन्त्रों पर लागू हो सकती हैं, वे इसके सम्बन्ध में भी लागू क्यों नहीं हो सकतीं?

पर, यह शंकाएँ तब तक बनी ही रहेंगी, जब तक हम ओंकार के विषय में ठीक प्रकार से न जानेंगे। वृहदारण्यक-उपनिषद् में याज्ञवल्क्य-गार्गी सम्वाद है, जिसमें याज्ञवल्क्य कहते हैं—

यो वा एतदक्षरं गार्गी अविदित्वाऽस्मिल्लोके जुहोति यजते, तपस्तप्यते बहूनि वर्ष सहस्राणि अन्तवदेवास्य तद् भवति। यो वा एतदक्षरं गार्गी अविदित्वास्माल्लोकात्प्रैति स कृपणोऽथ य एतदक्षरं गार्गि विदित्वास्माल्लोकात्प्रैति स ब्राह्मणः॥

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran



'हे गार्गी ! इस अक्षर ब्रह्म को जाने बिना ही जो इस लोक में यज्ञादि कर्म करते हैं और सहस्रों वर्ष पर्यन्त तप करते रहते हैं, उनका वह कर्म नाशवान होता है। हे गार्गी ! जो इस अविनाशी ओंकार का ज्ञान प्राप्त किये बिना इस लोक से गमन करते हैं वे कृपण हैं। जो इसे जान कर जाते हैं, वे ही ब्राह्मण हैं।'

इससे स्पष्ट है कि ब्राह्मणत्व की कसौटी भी ज्ञान है। कोई अज्ञानी मनुष्य यदि जन्म से ब्राह्मण हो तो इस उपदेश के अनुसार वे कृपण तो कहे ही जा सकते हैं। यहाँ हमारा उद्देश्य वर्ण-व्यवस्था के पक्ष या विपक्ष में कहने का नहीं है, वरन् उपदेश पर प्रकाश डालना मात्र ही है. जिसके अनुसार वे सभी जप, तप व्यर्थ हैं जो ओंकार के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी प्राप्त किये बिना ही हुए हों। इसलिए हम जब भी मोक्ष के लिये प्रयत्नशील हों, जब भी अपवर्ग की कामना करें, पहिले इस अक्षर ब्रह्म को भले प्रकार से जानने के प्रयत्न में लग जाँय। वस्तुतः ओंकार सम्बन्धी ज्ञान कुछ कठिन कार्य नहीं है। मनुष्य जब निश्चय कर लेता है तब असम्भव भी सम्भव हो जाता है।

---

# प्रणव और ओंकार में अभेद

## निराकार का रूपान्तरण–

ओंकार को अक्षर, नाद और प्रणव भी कहते हैं। शास्त्रों में जहाँ 'प्रणव' शब्द आये वहाँ उसका अर्थ ओंकार ही समझना चाहिये। कुछ विद्वान प्रणव और ओंकार में निर्गुण सगुण का भेद मानते हैं। किन्तु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



यदि निर्गुण सगुण हो—निराकार साकार हो तो वह भेद नहीं, रूपान्तरण मात्र ही होगा। निर्गुण का अर्थ है प्रपंच का अभाव, जहाँ प्रपंच विलीन हो चुका हो, उसे निर्गुण या निराकार कहते हैं। प्रणव का अभिप्राय उसी से है। शिव पुराण का एक प्रसंग है—मुनियों ने सूतजी से प्रार्थना की कि 'हे सूतजी ! कृपया प्रणव की व्याख्या करने का कष्ट करें।' इस पर सूतजी ने मुनियों के प्रति कहा—

प्रो हि प्रकृति जातस्य संसारस्य महोदधेः।
नवं नावांवरमिति प्रणव वै विदुर्बुधाः॥
प्रः प्रपंचो न नास्ति वो युष्माकं प्रणवं विदुः।
प्रकर्षेण नयेद्यस्मान्मोक्षं वः प्रणवं विदुः॥

"यह संसार प्रकृति के द्वारा ही प्रकट है, इसे तारने में नौका रूप होने के कारण ही प्रणव है। अथवा इसका दूसरा महत्वपूर्ण अर्थ यह है—'प्र' से प्रपंच, 'न' से नहीं और 'व' से तुम में अर्थात् आत्मा में प्रपंच नहीं है यह अर्थ समझो। अथवा प्रकृष्टता से जप करने वाले के लिये मोक्ष का देने वाला होने से भी इसे प्रणव कहा गया है।"

आगे कहा है—हे मुनियो ! अपने जप करने वाले जापकों और मन्त्र-पूजकों के कर्मों को क्षीण करके दिव्य ज्ञान देने वाला होने के कारण भी यह प्रणव कहा जाता है। माया-रहित होने से इसे नूतन भी कहते हैं। प्रकृष्टता से यह महान प्रणव नवीन स्वरूप बना देता है। नवीन कर देने वाला होने से भी विज्ञजन इसे प्रणव कहते है। इसके सूक्ष्म और स्थूल दो भेद हैं। यथा—

सूक्ष्मेकाक्षरं विद्यात् स्थूलं पंचाक्षरं विदुः।
सूक्ष्ममव्यक्त पंचार्णं सुव्यक्तार्णं तथेतरत्॥
जीवन्मुक्तस्य सूक्ष्मं हि सर्वसारं हि तस्य हि।
मन्त्रेणार्थानुसन्धानं स्वदेह विलयावधि॥

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran



"एकाक्षर प्रणव सूक्ष्म है तथा पंचाक्षर प्रणव स्थूल। सूक्ष्म स्वरूप अव्यक्त है और पंचाक्षर वाला स्थूल स्वरूप व्यक्त है। जीवन्मुक्त के लिये सबका सारभूत सूक्ष्म स्वरूप ही हितकर है मन्त्र का अनुसन्धान करते हुए देहान्त में देह को भी लीन कर लेना सूक्ष्म उपासना है।"

आगे कहा कि सूक्ष्म के भी दो भेद हैं--(१) ह्रस्व, और (२) दीर्घ। अकार, उकार, मकार तथा बिन्दु और नाद सहित (जिसमें अर्धचन्द्र-बिन्दु होती है, वर्ण और मात्रा नहीं होती) शब्द, काल और कला से युक्त होता है। 'अ, उ, म' इन तीन अक्षरों को दीर्घ प्रणव कहते हैं। योगियों के हृदय में यही निवास करता है। जो मकार रूप तन्त्रि-तत्व हैं, उसे ह्रस्व प्रणव कहते हैं। शिव और शक्ति का एकाकार होने से मकार ही तीन तत्व स्वरूप हुआ है। जो साधक सब पापों के नष्ट होने की कामना करते हों, उनके लिये ह्रस्व प्रणव का जप ही प्रशस्त है। तथा—

भूवायुकनकार्णोद्यौः शब्दाद्याश्च तथा दश।
आशान्वये दश पुनः प्रवृत्ता इति कथ्यते॥

"पृथिवी, वायु, तेज, जल, आकाश और शब्द आदि दस दिशाओं का सम्बन्ध होने से दस पुरुष प्रवृत्ति मार्ग में प्रवृत्त कहे जाते हैं। शब्दादि विषयों से युक्त जीव संसार-चक्र में पड़े रहते हैं तथा इससे भिन्न निवृत्त कहे जाते है।"

सूतजी ने कहा—"मुनिगण! जो संसार में प्रवृत्त हैं, उन्हें ह्रस्व प्रणव का जप करना चाहिये और निवृत्ति की इच्छा वालों को दीर्घ प्रणव का जप श्रेयस्कर है। वेद के प्रारम्भ में ओंकार का ही प्रथम प्रयोग करे, दोनों समय के सन्ध्या-वन्दन में भी ओंकार का जप ही प्रशस्त समझना चाहिये।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



भगवान शंकर ने 'प्रणव' शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है कि 'प्रकृष्ट नूतनो वर्णो नित्य नूतन विग्रहः' अर्थात् 'प्रकृष्ट का अभिप्राय उत्कृष्ट से है या अत्यन्त सी है तथा नूतन का अर्थ नवीन या नया है। इस प्रकार जो अत्यन्त उत्कृष्ट तथा नित्य नवीन रूप धारण करने वाला है, वह ब्रह्म प्रणव है—

ब्रह्मा से लेकर समस्त प्राणियों, देहधारियों में प्राण रूप से विद्यमान रहने के कारण भी वह प्रणव ही है। वही अविनाशी, त्रिगुणात्मक, सभी अक्षरों में—सभी ध्वनियों में ओतप्रोत रहता है, इसलिए प्रणव है। वही शुभ स्वरूप एवं हंस रूप आत्मा है तथा वही सृष्टि, पालन और प्रलय-कर्त्ता परमात्मा है।

## वातावरण में उद्वेलन—

प्रणव के उच्चारण मात्र से ऐसी स्वर-लहरी उत्पन्न होती है, जिसके द्वारा सम्पूर्ण वातावरण उद्वेलित हो सकता है। मान्यता है कि भगवान् कृष्ण ने जो महारास किया था उसमें बजने वाली किंकणियों, मृदंगों, तबलों तथा बाँसुरी आदि की ध्वनि प्रणव-ध्वनि से पूर्ण साम्य रखती थी। उसमें जिस आनन्द रस की वर्षा हुई, उसमें सभी प्राणी अपने को भूल गये। मनुष्य ही नहीं, समस्त पशु-पक्षी एवं अन्यान्य जीव भी निस्तब्ध हो गये थे।

महान् विचारक एवं जन-नेता डॉ० सम्पूर्णानन्द ने प्रणव की अनुभूति के विषय में चर्चा करते हुए कहा था कि "जब योगी का प्राण सुषुम्ना में प्रवेश करके मूलाधार के ऊपर उठता है, तब उसे अन्य अनुभूतियों के साथ दिव्य नाद की भी अनुभूति होती है। उसके मार्ग में जो स्थान आते हैं—ऐसे स्थान, जिन्हें एक प्रकार से प्राण की यात्रा के स्टेशन कह सकते हैं, उनकी 'चक्र' संज्ञा है। प्रत्येक चक्र में नाद का एक विशेष रूप होता है। हिंदी का प्रयोग करने वाले सिद्ध और सन्त मत

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgac

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran



के आचार्यों ने इन नादों को सामूहिक रूप से 'अनहद' कह कर पुकारा है, जो संस्कृत के 'अनाहत' का ही तद्भव रूप है। सहस्रार में पहुंच कर नाद के सूक्ष्मतम रूप का अनुभव होता है, जिसे 'प्रणव' नाम दिया गया है।"

नारद परिव्राजकोपनिषद् में प्रणव की चर्चा का एक सुन्दर वृत्तान्त है। नारदजी के प्रश्न करने पर ब्रह्माजी ने कहा—'मुमुक्षुओं के लिये तारक मन्त्र है प्रणव, यही साक्षात् ब्रह्म है। यदि उनका चिन्तन व्यष्टि और समष्टि दोनों में किया जाय तो निश्चय ही अभीष्ट की पूर्त्ति हो सकती है।'

नारदजी ने व्यष्टि और समष्टि के स्पष्टीकरण का निवेदन किया तो ब्रह्माजी ने कहा—'ब्रह्म के दो रूप हैं—एक व्यष्टि और दूसरा समष्टि। इससे चार भेद हैं, एक है—ब्रह्म प्रणव और तीन हैं—संहार प्रणव, सृष्टि प्रणव और उभयात्मक प्रणव। उभयात्मक अर्थात् सृष्टि और संहार मिश्रित। उभयात्मक प्रणव के भी दो भेद हैं—बाह्य और आभ्यान्तरिक। जो बाह्य प्रणव है वह व्यष्टि प्रणव है तथा जो आभ्यान्तरिक प्रणव है वही समष्टि प्रणव है। ब्रह्म प्रणव का एक भेद व्यावहारिक प्रणव भी है।

जो उभयात्मक प्रणव कहा है, वही विराट् प्रणव है। अकारादि चार मात्राओं वाले स्थूल आदि भेद से युक्त प्रणव को अर्धमात्रा प्रणव भी कहते हैं। एक आर्ष प्रणव और भी है।

## प्रणव ही ओंकार है—

प्रणव ही ओंकार रूप एकाक्षर ब्रह्म है। यही अन्त प्रणव कहा गया है। यही आठ भागों में विभक्त है—अकार, उकार, मकार, अर्ध-मात्रा, बिन्दु, नाद, कला और शक्ति। चार मात्रा के रूप में परिलक्षित होने वाले ओंकार की प्रत्येक मात्रा के अनेकानेक भेद हैं। अकार मात्रा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra


के अवयव दस हजार हैं, उकार मात्रा के एक हजार, मकार मात्रा के एक सौ तथा अर्धमात्रा के अवयव तो अनन्त ही हैं।

विराट् प्रणव सगुण और संहार प्रणव निर्गुण है। सृष्टि प्रणव का सम्बन्ध सगुण-निर्गुण दोनों से है। विराट् प्रणव अकारादि चार मात्राओं की समष्टि वाला है और संहार प्रणव चतुर्थ मात्रात्मक तथा अर्धमात्रात्मक है।

ब्रह्माजी ने नारदजी को जो उपदेश दिया उस पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि प्रणव और ओंकार में कोई भेद नहीं है। छान्दोग्य में कहा है—

अथ खलु य उद्गीथ: न प्रणवो: य: प्रणवो स उद्गीथ इत्यवौ वा आदित्य उद्गीथ एष प्रणव ओमिति ह्येष स्वरन्नेति ॥

"जो यह प्रसिद्ध उद्गीथ है वही प्रणव है और जो प्रणव है वही उद्गीथ है। यह सूर्य भी उद्गीथ है, वही प्रणव है, यही ओम् है, यही स्वर अथवा नाद है।"

इसी उपनिषद् के एक वृत्तान्तानुसार कौषीतकि ऋषि ने एक समय अपने पुत्र को बताया था कि 'मैंने इसी आदित्य का ध्यान किया था, जिसके प्रभाव से तू मेरा एक पुत्र हुआ। यदि तू भी रश्मिवंत सूर्य का इसी प्रकार ध्यान करेगा तो तेरे अनेक पुत्र होंगे।' इससे स्पष्ट है कि सूर्य में प्रणव की भावना करते हुए उपासना करने से लौकिक कामनाएँ भी पूर्ण होती हैं।

नादबिन्दूपनिषद् के अनुसार 'प्रणव को यदि हंस मानें तो उसका दाँया पंख अकार और बाँया पंख उकार होगा। मकार उसकी पूँछ और अर्धमात्रा सिर है। उस स्थिति में सतोगुण शरीर तथा रजोगुण और सतोगुण—दोनों पाँव होंगे। लोकों की स्थिति इस प्रकार होगी कि नाभिदेश में महर्लोक, कटिदेश में स्वर्लोक, पाँवों में भूलोक और जानुओं में भुवर्लोक होगा। जनलोक हृदय में, तपलोक कण्ठ में और सत्यलोक

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran


दोनों भौंहों के मध्य रहेगा। इस प्रकार के इस प्रणव रूपी हंस पर आरूढ़ होकर साधक उसके मनन, चिन्तन, अनुष्ठान, ध्यान आदि के द्वारा अपने सहस्त्रों पापों से निवृत्त होकर मोक्ष की प्राप्ति में सहज ही सफल हो जाता है।

## प्रणव हंस के दो पंख—

नादबिन्दूपनिषद् ने प्रणव रूप हंस के दोनों पंखों को जीतने की बात कही है—

अभ्यस्यमानो नादोऽयं बाह्यमावृणुते ध्वनिम्।
पक्षाद्विपक्षमखिलं जित्वा तुर्यपदं व्रजेत्॥

"इस नाद का अभ्यास करने से बाह्य ध्वनियाँ आवरित हो जाती हैं। इस प्रकार अकार और मकार रूप दोनों पंखों को जीतकर प्रणव को वश में करे। ऐसा करने पर साधक को तुरीयपद रूप मोक्ष की प्राप्ति होती है।" इसी उपनिषद् में कहा है—

अन्तरंग तरंगस्य रोधे वेलायतेऽपि च।
ब्रह्मप्रणव संलग्न नादो ज्योतिर्मयात्मकः॥

"नाद के प्रणव में संलग्न होने पर जब ज्योतिर्मयता को—पूर्ण स्वच्छता की प्राप्ति हो जाती है तब मन उसी ब्रह्म प्रणव में लीन हो जाता है। उससे अगले मन्त्र में तद्विष्णो परमं पदम्' कह कर यह सिद्ध किया है कि विष्णु का परमपद वही है, वही अवस्था है परमपद वाली जो ब्रह्म प्रणव में लीन होने पर प्राप्त होती है

मैत्रायण्युपनिषद् में 'य उद्गीथ स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ' कहते हुए प्रणव और उद्गीथ की एकता सिद्ध की गई है। फिर कहा है कि जो सूर्य है, वह इस अक्षर का ही रूप है, इसलिये 'ओम्' इस एक अक्षर से ही सूर्य की उपासना करनी चाहिये। उसके रहस्य को इसी के द्वारा समझा जा सकता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



आत्मबोधोपनिषद् में ओंकार और प्रणव की एकता का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है—

प्रत्यगानन्दं ब्रह्मपुरुषं प्रणव स्वरूपं अकार उकार मकार इति यक्षं प्रणवं तदेतदोमिति यमुक्त्या मुच्यते योगी जन्म संसार बन्धनात् ।

"प्रत्येक व्याप्त आनन्द स्वरूप ब्रह्म प्रणव रूप ही है। उसका स्वरूप है अकार, उकार, मकार। यही प्रणव ओंकार है। उसका जप करने से योगी संसार-बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

योगतत्त्वोपनिषद् में भी ओंकार और प्रणव का समान रूप प्रदर्शित किया गया है—

जपेत्पूर्वार्जितानां तु पापानां नाश हेतवे ।
सर्वविघ्नहरो मन्त्रः प्रणवः सर्वदोषहा ।।
एवमभ्यासयोगेन सिद्धिरारम्भ संभवा ।
ततो भवेद् घटावस्था लवनाभ्यास तत्परा ।।

"पूर्व जन्म के पापों को नष्ट करने के उद्देश्य से सर्वदोष-नाशक तथा सभी प्रकार के विघ्नों को दूर करने वाले प्रणव मन्त्र का जप करना चाहिए। इस प्रणवमन्त्र के अभ्यास द्वारा सिद्धियों का आरम्भ हो सकता है तथा घटावस्था की प्राप्ति भी हो सकती है।

जाबालदर्शनोपनिषद् में प्रणव साधना को प्राणायाम के साथ करने का निर्देश दिया है—

वर्णत्रयात्मकाः प्रोक्ता रेचपूरककुम्भकाः ।
स एष प्रणवः प्रोक्तः प्राणायामस्तु तन्मयः ।।

"प्रणव में जो तीन वर्ण हैं—अकार, उकार, मकार वे क्रमशः प्राणायाम की रेचक, पूरक और कुम्भक क्रियाओं से सम्बन्धित हैं। इन तीनों वर्णों का एकत्र होना ही प्रणव है। इसलिये प्राणायाम को भी प्रणव स्वरूप माना गया है।"

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran



उक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाता है कि ओंकार और प्रणव में किंचित् भी भेद नहीं है। जो अध्येता इस प्रकार इन तथ्यों पर विचार करते हैं, उनके लिये प्रणव और ओंकार में तादात्म्य के दर्शन स्पष्ट रूप से हो सकते हैं। अगले पृष्ठों पर प्रणव और ओंकार के अर्थों पर पृथक्-पृथक् रूप से विचार करने का प्रयत्न करेंगे।

---

# प्रणव का अर्थ-विचार

**सर्वमन्त्रात्मक प्रणव--**

वृद्धहारीति स्मृति का एक श्लोक है—

सर्वेषामेव मन्त्राणां कारणं प्रणवः स्मृतः।
तस्मात् व्याहृतयोजाताः ताभ्योवेद त्रयं तथा ॥

"प्रणव समस्त मन्त्रों को उत्पन्न करने वाला कहा जाता है। प्रणव से ही गायत्री की तीन व्याहृतियाँ उत्पन्न हुईं और उन तीन व्याहृतियों से तीन वेद हुए।"

शिव पुराण में शिव और प्रणव की एकता प्रदर्शित करते हुए प्रणव को शिव—परमात्मा का वाचक माना है। यथा 'शिवो वा प्रणवो ह्येष प्रणवो वा शिवः स्मृतः' अर्थात् 'शिव ही प्रणव है और प्रणव ही शिव कहे जाते हैं' पद्मपुराण में कहा है कि 'जब तक जीवन रहे, तब तक प्रणव का जप-स्मरण करते रहना चाहिये। इसी पुराण में प्रणव-जप की तीन विधियों का भी उल्लेख किया है। यथा—

ह्रस्वा दहति पापानि दीर्घं शान्ति प्रदायकः।
प्लुतस्तु सर्वसिद्धिः स्यात्प्रणवास्त्रि विधि स्मृतः ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



जप तीन प्रकार के हैं—ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत। क्रमशः इन्हें उपांशु, तार स्वर और मानस कहते हैं। ह्रस्व, या उपांशु जप मन्द स्वर से होता है, दीर्घ या तार स्वर उच्च स्वर है तथा प्लुत का अभिप्राय मन ही मन में जप करने से है। मन्त्र में कहा गया है कि "प्रणव का उपांशु जप सब पापों को नष्ट कर देता है। दीर्घ स्वर वाला जप शान्ति देने वाला होता है तथा मानसिक जप के द्वारा सब प्रकार की सिद्धि प्राप्त होती है। इस प्रकार प्रणव-जप के तीन भेद कहे जाते हैं।" अन्यत्र कहा है—

युञ्जीत प्रणवे चेत प्रणवो ब्रह्म निर्भयम्।
प्रणवे नित्ययुक्तस्य न भय विद्यते क्वचित्॥

"प्रणव निर्भय ब्रह्म है, इसलिये मन को प्रणव में लगा दे। जिसका मन प्रणव में लगा है—प्रणव में रमा हुआ है, उस मनुष्य को भय तो कहीं है ही नहीं।"

इस प्रकार प्रणव ही स्मरण के योग्य है, क्योंकि उसके बिना कहीं कुछ नहीं है। यह संसार रूप से जो व्यक्त हुआ है वह प्रणव ही है। जो अव्यक्त है वह भी प्रणव से भिन्न नहीं है।

प्रणव की साधना मन को भी स्थिर करने वाली है और मन ही प्राणियों को विभिन्न विषयों में भटकाता रहता है। यदि मन का भटकना रुक जाय तो जन्म-मरण का चलता हुआ चक्र ही रुक सकता है। शास्त्र का आदेश है—

वुद्धि तत्वेन धीशून्यं मौनमेकान्तवासिना।
दीर्घ प्रणववच्चार्य मनोराज्यं विजीयते॥

"बुद्धि तत्व के द्वारा बुद्धि को शून्य करके-प्रणव में लगा कर, मौन एवं एकान्त में निवास करता हुआ साधक यदि दीर्घ प्रणव के समान महान मन्त्र का उच्चारण करे तो निश्चय ही मनोराज्य पर विजय प्राप्त कर सकता है।"

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran



## प्रणव ही परब्रह्म है–

माण्डूक प्रवचन में 'प्रणवश्च परः स्मृतः' कह कर यह प्रतिपादन किया है कि जिस परतत्व रूप तुरीय ब्रह्म में देश, काल, वस्तु आदि नहीं, वही प्रणव कहा गया है। तात्पर्य स्पष्ट है कि यहाँ नाम-नामी का भी भेद नही है—एक मात्र अखण्ड, अद्वैत, परिपूर्ण चिन्मात्र सत्ता ही प्रणव है।

'अपूर्वोऽनन्तरोबाह्यो' आदि कहते हुए यह भी बताया है कि वह अपूर्व है अर्थात् उसका कभी पूर्व भी नहीं—कोई पहिले भी नहीं हुआ उससे। अपूर्व कहने में यही भी भाव निहित है कि इसका भी पता नहीं कि वह कब से है? ऐसा पता तो तब लगे जब किसी ने देखा हो उसे। जो लोग ब्रह्म को अनादि कहते हैं, वे भी ऐमा ही मानते हैं। इससे समझना चाहिये कि अपूर्व में और अनादि में कोई अन्तर नहीं।

और जब हम ऐसा मान लेते हैं तब यह सिद्ध हो जाता है कि जहाँ अपूर्व कहा जाय, अनादि कहा जाय, वहाँ उसका अर्थ प्रणव ही हैं। वही न भीतर है, न बाहर है और भीतर-बाहर दोनों में से कहीं नहीं है। इसका तात्पर्य है कि वह सर्वत्र है, इसीलिये कहा है— 'प्रणवोऽव्ययः' अर्थात् 'प्रणव अव्यय है' और जब कहा जाय केवल अव्यय शब्द तब भी समझना चाहिये कि यह प्रणव के लिये ही कहा गया है।

इस प्रकार प्रणव अनादि, अनन्त और अव्यय है। जब हम ऐसा मान लेते हैं तब यह सहज ही सिद्ध हो जाता है कि वह अद्वैत है। यह समस्त विश्व प्रपंच प्रणव से ही निकला है, प्रणव से ही विश्व का पालन हो रहा है, क्योंकि वही विद्यमान है प्राण रूप से। यह विश्व अन्त में लय भी उसी प्रणव में हो जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



## ब्रह्माण्ड प्रकृति में प्रणव रूप प्रकम्पन–

प्रणव नाद के विषय में एक बहुत सुन्दर प्रक्रिया बताने वाला शास्त्रीय श्लोक है—

कार्यं यत्र विभाव्यते किमपि तत्स्पन्देन सव्यापकम्
स्पन्दश्चापि तथा जगत्सुविदित: शब्दान्वयी सर्वदा।
सृष्टिश्चै तथादिमाकृति शेषत्वादभूत स्पन्दिनी
शब्दश्चोद्भनत्तदा प्रणव इत्योंकार रूप: शिव: ॥

"जहाँ क्रिया होती है, वहाँ कम्पन भी अवश्य होता है। जहाँ कम्पन होगा, वहाँ शब्द भी अवश्यम्भावी है। (जब हम सृष्टि के सम्बन्ध में विचार करते हैं तब) निष्कर्ष रूप से सृष्टि रूपी क्रिया में साम्यावस्था वाली प्रकृति सर्व प्रथम हिलोर की प्रतीति होती है। उस हिलोर में जो ध्वनि होती है उसी संज्ञा रूप से व्यक्त होता है प्रणव रूपी शिव।"

इसका तात्पर्य है कि प्रलय के पश्चात् जब परमात्मा निश्चय करता है—'एकोऽहं बहुस्याम'—'मैं एक से बहुत हो जाऊँ, अनन्त हो जाऊँ, तब ब्रह्माण्ड प्रकृति में कम्पनों का आरम्भ होता है और उस समस्त ब्रह्माण्ड प्रकृति में जिस प्रथम क्षण कम्पन का आविर्भाव होता है, वही प्रथम कम्पन प्रणव है। अथर्वशिरोपनिषद् में एक अन्य तथ्य पर प्रकाश डाला है—

प्राणान् सर्वान् परमात्मानि प्रणामयतीत्ये तस्मात् प्रणव:।

"परमात्मा में सभी प्राणवृत्तियाँ जिस अवस्था में लीन हो जाती हैं तब आत्मा की वह अवस्था प्रणव होती है।" इसका एक अन्य अर्थ भी है—'उपासक मन, बुद्धि, वाणी आदि को शान्त, स्वच्छ एवं स्थिर करके समस्त प्राणों को परमात्मा में प्रणाम कर देता (निवेदन या समर्पण कर देता) है, इसलिये उसे 'प्रणव' कहते हैं।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran



योगियों ने प्रणव की व्याख्या इस प्रकार से की है कि वाणी चार प्रकार की है—(१) वैखरी, (२) मध्यमा, (३) पश्यन्ति, और (४) परा। इनमें वैखरी वाणी अत्यन्त स्थूल है, उससे कम स्थूल है मध्यमा। मध्यमा से भी कम स्थूल पश्यन्ति है, किन्तु परा वाणी में तो स्थूलता है ही नहीं। वह तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। यह परा वाणी ही आदि ब्रह्म प्रणव रूप से माना गया है।

परमात्मा के असंख्य नाम हैं—'हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता' भगवान् अनन्त हैं, उनकी कथाएँ भी अनन्त हैं। जब कथाएँ अनन्त हुईं तब नाम-रूप भी अनन्त ही होंगे। हम जो अनन्त रूप देखते हैं—ब्रह्माण्ड में, वे सब परमात्मा के ही रूप हैं। उनके नामों में भिन्नता भी प्रत्यक्ष देखी जाती है। किन्तु जब यह विश्व ब्रह्म में विलीन हो जाता है तब कोई नाम-रूप नहीं रहता, एक अद्वितीय ब्रह्म ही शेष रह जाता है।

जब पुनः यह अनन्त नाम-रूप वाला विश्व प्रकट होने को होता है, तब परब्रह्म परमात्मा सर्व प्रथम प्रकृति से सम्बन्ध स्थापित करता है। तभी एक अनाहत ध्वनि उद्भूत होती है, जो प्रणव कहलाती है। वही अनाहत ध्वनि विश्व के समस्त स्थिति काल में निरन्तर विद्यमान रहती है। यह जितनी भी प्रकार की ध्वनियाँ सुनाई देती हैं, सब एक अनाहत ध्वनि के ही विभिन्न रूप हैं।

यही अनाहत ध्वनि विश्व की मूल ऊर्जा है। वही विद्युत्, चुम्बक आदि अनेक रूपों में परिवर्तित होकर संसार का सृजन, संचालन और संहरण—तीनों कार्य करती है। विश्व में जितने भी कार्य-कलाप होते हैं, सब उसी से अनुप्राणित होते हैं। इस स्वतः निःसृत अनादि ध्वनि को ही योगीजन समाधि में सुनते और ब्रह्मानन्द का आस्वादन करते हुए आत्म-विभोर रहते हैं। यही ध्वनि स्तुतियों के योग्य एवं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



ध्वनि है, यही 'प्रणव' रूप से प्रसिद्ध है। यह नाम परमात्मा का स्वयंघोषित नाम है। निम्न उपनिषद्-वाक्य कितना महत्वपूर्ण है—

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवंचोत्तरारणिम् ।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद् एवं पश्येन्निगूढवत् ।।

"अपने देह को अरणि बनाकर प्रणव को उत्तर अरणि बनाओ और जैसे मन्थन-दण्ड (मथानी) से बार-बार रगड़ने पर उनमें छिपी हुई अग्नि प्रकट हो जाती है, वैसे ही उक्त अरणियों की ध्यान रूप रगड़ से उस परम ज्योति को उत्पन्न करके देखो।"

गोपथ ब्राह्मण में प्रणव को ही अमृत कहते हुए उसकी उपासना का फल इस प्रकार कहा गया है—

अमृत वै प्रणवः अमृतेनैव तन्मृत्युं तरति। तद्यथा मन्त्रेण वा वंशेन वा गर्तं संक्रमेण एवं तत्प्रणवेनोपसन्तनोति ।।

"प्रणव ही अमृत है, उस अमृत के द्वारा ही मृत्यु को पार किया जा सकता है। जैसे मन्त्र से—उपाय से या बांसों से किसी गढ़े को लांघ सकते हैं, वैसे ही प्रणव रूप सेतु के द्वारा भवसागर को पार किया जाता है।

## भोग-मोक्ष का दाता प्रणव–

प्रणव की उपासना और उसके फल का वर्णन केवल अध्यात्म-पक्ष में ही नहीं हुआ है, भोग-पक्ष में भी हुआ है, जिससे यह सिद्धि होती है कि प्रणव-साधना कामना-परक भी है और कामना से रहित भी है। शास्त्र का ही वचन है—

प्रणवाद्यं गृहस्थानां तच्छून्यं निष्फलं भवेत् ।
आद्यन्तयोर्वनस्थानां यतीनां महतामपि ।।

"गृहस्थों के लिये भी आवश्यक है कि वे जब जो मन्त्रादि का जप करें, उसके आदि में प्रणव अवश्य लगा लें। इसका एक यह तात्पर्य भी

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran



है कि जो सबका आदि कारण है प्रणव है, गृहस्थों को उसकी साधना करनी चाहिये। जो साधना प्रणव-रहित है, वह फलहीन ही रहती है। वानप्रस्थी और संन्यासी को मन्त्रों के आदि और अन्त में—दोनों समय प्रणव लगाना आवश्यक है।

इससे स्पष्ट है कि प्रणव-साधना गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी सभी के लिये वैध है। गृहस्थ को तो मन्त्र के आदि में प्रणव लगाने से ही श्रेष्ठ फल मिल जाता है, क्योंकि वह जो कामना करते हैं, वह भौतिक होती है। भौतिक कामना स्थूल होने के कारण शीघ्र फलीभूत हो जाती है, जब कि मोक्ष की कामना सूक्ष्म होने के कारण देर में फलीभूत हो सकती है।

आपने देखा होगा कि रेलगाड़ी जब किसी पर्वतीय क्षेत्र में जाती है तो उसमें एक इंजिन आगे और एक पीछे भी लगाया जाता है। क्योंकि उसमें जोर अधिक लगाना होता है। गाड़ी को गतिशीलता बनी रहे, इसलिये पीछे वाला इंजिन उसे आगे की ओर धकेलता—बढ़ाता रहता है। यदि पीछे इंजिन न हो तो हो सकता है कि आगे का इंजिन उसे न खींच पाये। यह भी हो सकता है कि पीछे इंजिन न रहने की स्थिति में कुछ डिब्बे किसी कारणवश खुल कर पीछे की ओर चल पड़ें।

किन्तु जब गाड़ी मैदानी क्षेत्र में चलती है तब प्रायः उसमें पीछे की ओर इंजिन लगाने की आवश्यकता नहीं होती। यहाँ भी जब गाड़ी अधिक लम्बी हो तो उसमें भी दो इंजिन लगा दिये जाते हैं। मालगाड़ियों में भी बहुत बार दो इंजिन देखे जाते हैं।

इसका कारण शक्ति में वृद्धि किया जाना है। गृहस्थ की कामना-पूर्ति के लिये जितनी शक्ति अपेक्षित है, वह एक प्रणव आदि में लगा देने से ही उत्पन्न हो जाती है। किन्तु वानप्रस्थ और संन्यासी को मोक्ष के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



लिये अधिक शक्ति की आवश्यकता होती है, इसलिये उन्हें आदि अन्त में प्रणव लगाने का निर्देश है।

## सब कुछ प्रणव से प्रकाशित–

योगचूड़ामण्युपनिषद् में प्रणव की ही तीन मात्राएँ कही गई हैं। यथा—

अकार उकार मकारश्चेति त्रयो वर्णास्त्रयो वेदास्त्रयो लोकास्त्रयो गुणास्त्रयोऽक्षराणि एवं प्रणवः प्रकाशते।

"अकार, उकार, मकार ये तीन, तीन वर्ण, तीन वेद, तीन लोक, तीन गुण और तीन अक्षर—इन सब रूपों में यह प्रणव ही प्रकाशित है। अथवा यह सब प्रणव के द्वारा ही प्रकाशित हैं।"

इसका अभिप्राय है कि अकार, उकार, मकार यह तीनों मात्रा प्रणव रूप हैं, प्रणव से ही प्रकाशित हुईं हैं। इनके तीन वर्ण हैं—अ, उ, म वे भी प्रणव से व्यक्त हैं, तीन वेद ऋक्ऽयजुः, साम की उत्पत्ति भी प्रणव से ही हुई है। तीन गुण हैं—सत्व, रज और तम, उन्हीं के आधार पर यह संसार स्थित है। उन गुणों के बिना भी कहीं कुछ नहीं है। क्यों कि रूपों में मुख्य कारण यही है। ब्रह्मा सत्वगुण के द्वारा सर्गारम्भ करते हैं, विष्णु रजोगुण के द्वारा संसार का पालन करते हैं। रुद्र तमोगुण के द्वारा प्रलय करते हैं। इस प्रकार प्रणव की मात्राओं के समान ही संसार की तीन स्थितियाँ मानी गई है। नृसिंहपूर्वतापिज्युपनिषद् में प्रणव की चार मात्राएँ मानकर उनका पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यु लोक और चन्द्रलोक से एकत्व प्रतिपादन हुआ है। यथा—

वै प्रणवस्य या पूर्वा मात्रा पृथिव्याकारः स ऋग्भिः ऋग्वेदो ब्रह्मा वसवो गायत्री गार्हपत्यः सा साम्नः प्रथमः पादो भवति।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran



द्वितीयान्तरिक्षं स उकारः स यजुर्भिः यजुर्वेदो विष्णुरुद्रास्त्रि-ष्टुब्दक्षिणाग्निः साम्नो द्वितीयः पादो भवति। तृतीया द्यौः स मकारः सामभिः सामवेदो रुद्रा आदित्या जगत्याहवनीयः सा साम्नस्तृतीयः पादो भवति। यावसानेऽस्य चतुर्थ्यर्धमात्रा सा सोमलोक ओंकारः सौऽथर्वनैर्मन्त्ररथर्वेद संवर्त्तकोऽग्निः मरुतो विराडेकर्षिभास्वती स्मृता सा साम्नश्चतुर्थ पादो भवति॥

"वह प्रणव प्रथम मात्रा 'अकार' से युक्त है, उसका लोक पृथिवी है तथा ऋचाओं से विभूषित ऋग्वेद ही उसका वेद है। देवता ब्रह्मा और छन्द गायत्री है। वह वसु देवताओं का गण तथा गार्हपत्य अग्नि स्वरूप है। यह जो कुछ भी है, सब इस प्रथम मात्रा में ही निहित है। यही साम का प्रथम पाद है।

प्रणव की दूसरी मात्रा 'उकार' है। उसका लोक है, अन्तरिक्ष, यजुर्मंत्रों से सम्पन्न यजुर्वेद ही उसका वेद है। वह विष्णु और रुद्र का गण है। दक्षिणाग्नि रूप उस द्वितीय मात्रा का त्रिष्टुप् छन्द है। साम का द्वितीय पाद यही है।

प्रणव की तीसरी मात्रा मकार है। उसका लोंक द्युलोक तथा साम-गान युक्त सामवेद ही उसका वेद है। रुद्र और आदित्य इसके गण हैं। छन्द जगती और अग्नि आवाहनीय है। इस प्रकार यह तृतींय मात्रा है और यहीं साम का तृतीय पाद है।

प्रणव की चौथी मात्रा में नादात्मक अर्धमात्रा का आभास मिलता है। उसका लोक चन्द्रलोक है तथा यह ओंकारवाची है। अथर्व मन्त्रों से सम्पन्न अथर्ववेद ही इसका वेद है अग्नि संवर्तक, मरुद्गण गण हैं हैं और छन्द विराट् है। इसके ऋषि ब्रह्मा हैं। यह मात्रा विश्व स्वरूपिणी होने के कारण अत्यन्त प्रकाश वाली है। साम का चतुर्थ पाद भी यही है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



इस प्रकार प्रणव परमात्मा ही है। वह सभी लोकों को व्याप्त करके अकेला ही अपनी सत्ता में विराजमान है। गीता में भगवान् कृष्ण स्वयं ही अपने सखा अर्जुन के प्रति कहते हैं—

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभाऽस्मि शशिसूर्ययोः।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु॥

"हे अर्जुन ! जल में ही रस रूप हूँ, चन्द्रमा और सूर्य में मैं ही प्रभा हूँ, सभी वेदों में प्रणव मैं ही हूँ तथा सब मनुष्यों में पुरुषत्व रूप भी मैं ही हूँ।"

इस प्रकार सर्वत्र प्रणव ही प्रणव है, सभी कुछ प्रणव है। प्रणव से रहित कहीं कोई पदार्थ नहीं। विश्व के कण-कण में एक मात्र प्रणव ही विद्यमान हैं।

इससे स्पष्ट होता है कि यह जितनी भी व्याख्या है, सभी प्रणव के अर्थ रूप में ही प्रयुक्त हुई है। यह भी स्मरण रखें कि प्रणव कहें या ओंकार कहें, भेद कुछ भी नहीं है दोनों कथनों में। किन्तु उसका पूर्ण अर्थ इस पुस्तक मैं तो क्या बड़े से बड़े ग्रन्थ के रूप में भी किया जाना सम्भव नहीं। क्योंकि जो सर्वत्र व्याप्त है, असीम है, अनन्त है, अद्वितीय है, उसका शब्दों में वर्णन किया जाना कठिन है। बड़े-बड़े योगीश्वर भी अपने वचनों को परमात्म-पक्ष में तो सदा ही अपूर्ण मानते रहे। फिर भी जो उपलब्ध है, जितना भी उपलब्ध है, उसी पर विचार करने बैठें तथा उसी को समझ सकें भले प्रकार से तो हमारा मन-मानस एक नई दिशा में मोड़ ले सकता है और जब भी ले ले तब हम समझ सकते हैं कि अवश्य ही हम नई उपलब्धि की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

# प्रणव के पच्चीस अर्थ

## 'प्रणव' की व्युत्पत्ति–

यदि प्रणव के अर्थ पर विचार करने लगे तो बहुत-से अर्थ बनेंगे। इतने अर्थ कि शायद अनुमान भी न लगाया जा सके उस विषय में। जैसे प्रणव असीम है, वैसे ही उसके अर्थ भी असीम ही हैं।

'प्रणव' शब्द की व्युत्पत्ति 'प्र' धातु में 'न्+अप्+णत्व' प्रत्यय लगाने से होती है। 'प्र' एक महत्वपूर्ण उपसर्ग भी है। जब यह किसी क्रिया में लगाया जाता है, तब इसका अर्थ होता है प्रथम, आगे, आगे की ओर, जैसे प्रगति, प्रस्थान, प्रगम आदि।

जब इसे विशेषवाची शब्दों में लगाया जाता है, तब इसका अर्थ होता है—अत्यधिक, बहुत—जैसे प्रमत्त, प्रकाम इत्यादि। किन्तु जब इसे संज्ञावाची शब्दों से पहिले लगाते हैं तो इसके अनेकों अर्थ हो जाते हैं, जैसे—उत्तमता, पवित्रता, प्रतिष्ठा, विशिष्टता, अभिलाषा, आरम्भ, घनिष्टता, बल, उद्भव-स्थान, सम्पूर्णता, लम्बाई, पृथक् राहित्य, अवसान इत्यादि।

प्रणव की व्युत्पत्ति 'प्र' धातु से होने के कारण उसकी सभी विशेषताएं तो उसमें हैं ही, प्रथम अक्षर भी 'प्र' होने से उसकी महती महिमा का अनुमान किया जा सकता है।

प्रणव का दूसरा अक्षर 'ण' भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके उच्चारण का स्थान मूर्धा है तथा उच्चारण में आभ्यन्तर प्रयत्न स्पष्ट (प्रभावित) और सानुनासिक होता है। किन्तु बाह्य प्रयत्न संवार (आच्छादन), नाद, घोष और अल्पप्राण है। इसका प्रयोग मूर्द्धन्य वर्ण,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



अन्तस्थ एवं 'म' और 'ह' के साथ होता है। पुल्लिग स्थिति में इसकी व्युत्पत्ति नख् धातु में 'ड' प्रत्यय लगाने से हुई है। जिससे विशेष अर्थ बनते हैं—ज्ञान, शिव, निर्णय, अलंकार, जल का गृह आदि। यद्यपि 'ण से शब्दों का आरम्भ नहीं होता, किन्तु कुछ धातुओं का प्रथम अक्षर 'ण' है। वस्तुत: 'ण' 'न' का स्थानीय है, तब यह शंका की जा सकती है कि 'न' का प्रयोग ही क्यों न किया जाय ? इस शंका का समाधान यह है कि कतिमय उपसर्गों के पहिले आने पर 'न' भी 'ण' के रूप में बदल जाता है। इसलिये 'ण' की आवश्यकता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। 'न' भी बाह्य प्रयत्न में 'ण' के समान ही संवार, नाद, घोष और अल्पप्राण है। इसके अर्थं धन-दौलत, सम्पत्ति, सेना, युद्ध, मुक्ता एवं गणेश आदि होते हैं। विशेषण रूप में समान, रिक्त, निरर्थक या व्यर्थ एवं अविभक्त। 'नहीं' के अर्थ में भी इसका प्रयोग है। वाह्य प्रयत्न में नाद होने के कारण नादार्थक भी है।

प्रणव का तीसरा अक्षर 'व' है। इसके उच्चारण में दाँतों का थोड़ा स्पर्श ओष्ठ के साथ होता है, इसलिये इसे दन्त्यौष्ठ कहते हैं। इसकी व्युत्पत्ति 'वा' धातु में 'ड' प्रत्यय लगने से होती है। इसके अर्थ हैं—निवास, आश्रय, समुद्र, कल्याण, मंगल, वायु, वस्त्र, वृक्ष, तुष्टि-साधन, कलशजन्य ध्वनि (कलश के बजाने पर जो ध्वनि हो), वरुण एवं समान (उपमा-परक, यथा) आदि।

यदि 'प्र' को पूर्वाक्षर के रूप में छोड़ दें तो 'प्रणव' के दो अक्षर ण और व का संयोग रह जाता है। इनमें से 'ण' को 'न' का स्थानीय मान लेने पर 'णव' का 'नव' बन जाता है। 'नव' शब्द की व्युत्पत्ति होती है 'नु' धातु में 'अप्, प्रत्यय लगाने से। नव के दो अर्थ मुख्य हैं—नया और नौ की संख्या। 'नया' मानने पर उसके तात्पर्यार्थ होते हैं—

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran



ताजा, सद्यः, आधुनिक इत्यादि। नव का अर्थ स्तोत्र भी है। इस प्रकार 'नव' शब्द भी कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है।

जब हम 'नव' का अर्थ संख्या-सूचक 'नौ' के रूप में लेते हैं तो उससे 'प्र' की शक्ति भी नौगुनी बढ़ जाती है। और जब ऐसा होता है तब तो 'प्रनव' (प्रणव) की महिमा अनन्त ही हो जाती है। 'नव' शब्द नवग्रह का तथा मानव शरीरस्थ नौ-द्वारा (दो नेत्र, दो नाक, दो कान, मुख, मल-मार्ग एवं मूत्र-मार्ग) का भी सूचक है।

## अर्थ और उनकी व्याख्या—

समग्र दृष्टि से देखें तो प्रणव के अनन्त अर्थ होते हैं, जिनके विषय में वाणी कहने में असमर्थ है तथा लेखनी भी वाणी की सहचरी होने के कारण उसका व्याख्यान नहीं कर सकती। मनुष्य के पास समय के अभाव को देखते हुए भी विस्तार की अपेक्षा संक्षेप का ही आश्रय लेना होता है। इसलिये प्रणव के कुछ अति विशेष अर्थों पर ही यहाँ विचार करेंगे जो कि (१) पवित्र, (२) विशिष्ट, (३) प्रतिष्ठित, (४) अभिलषित, (५) घनिष्ठ, (६) बल, (७) उद्भव-स्थान, (८) सम्पूर्ण या परिपूर्ण, (९) विस्तृत, (१०) आरम्भ, (११) पृथक् या अद्वितीय, (१२) निर्णय, (१३) अवसान रूप, (१४) ऐश्वर्य, (१५) अविभक्त, (१६) आश्रय, (१७) समुद्र, (१८) कल्याण, (१९) तुष्टि-साधन, (२०) नाद, (२१) वायु (प्राण), (२२) नित्य नवीन, (२३) स्तोत्र, (२४) ज्ञान, (२५) इनकी व्याख्या निम्न प्रकार है—

### (१) पवित्र—

प्रणव पवित्र ही नहीं, पवित्रतम है। उसी की पवित्रता प्राणिमात्र को पवित्र बनाये हुए है। प्रणव के जप से समस्त पापों से छुटकारा मिलने के कारण भी प्राणियों को पवित्र करने वाला है। देहाध्यास के कारण जो मनुष्य माया-मोह में फँसकर इन्द्रियों के वशीभूत बने हुए हैं,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



वे इसके ध्यान से सभी जाल-जंजालों से मुक्त हो जाते हैं। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि प्रणव-ध्यान ओंकार का ही ध्यान है और प्रणव-जप का तात्पर्य भी ओंकार के ही जप से है।

**(२) विशिष्ट—**

सभी प्राणियों का और दृश्य प्रपंच का एक मात्र उद्भव-कर्त्ता होने के कारण वह सभी से विशिष्ट माना जाता है। विश्व में जितने भी दृश्य-अदृश्य जीव हैं, वे सब समान होने के कारण सामान्य माने गये हैं। लोग मनुष्य में और पशु-पक्षी या कीट-पतंगादि में भेद मानते हैं अथवा वर्ण-भेद के कारण नीच-ऊँच मानते हुए किसी से प्रेम, किसी से घृणा करते हैं, उसके मूल में अहंकार ही काम करता है। वस्तुतः संसार में घृणा के योग्य तो कोई प्राणी है ही नहीं। जो साधक प्रणव-साधना करते हैं, वे इस प्रकार के घृणा-भाव से मुक्त होकर महानात्मा बन जाते हैं और इस प्रकार वे भी उपास्य के समान विशिष्टता को प्राप्त हो जाते हैं।

**(३) प्रतिष्ठित—**

प्रणव ब्रह्म ही एक मात्र प्रतिष्ठित है, क्योंकि उसी की प्रतिष्ठा ने सबको उपकृत किया हुआ है तथा उसी की प्रतिष्ठा से सब प्रतिष्ठित बने हुए हैं। जो देवी-देवताओं को प्रतिष्ठित मानते हैं, मन्दिरों में विद्यमान प्रतिमाओं को प्रतिष्ठित मानते हैं, वे भी उनमें प्रणव ब्रह्म की ही प्रतिष्ठा स्वीकार करते हैं। वस्तुतः देवी-देवताओं में जो प्रतिष्ठा है, वह एक मात्र उसी ब्रह्म की है। प्रतिमाओं की भी जब स्थापना की जाती है तब प्राण-प्रतिष्ठा रूप से प्रणव ब्रह्म की ही प्रतिष्ठा होती है। इससे स्पष्ट है कि एक मात्र वही ब्रह्म प्रतिष्ठित है तथा अन्यों के प्रतिष्ठत होने में उसी की प्रतिष्ठा निहित है।

**(४) अभिलषित—**

प्राणियों में, विशेषकर मनुष्यों में दो ही प्रकार की अभिलाषा

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran



रहती हैं—(१) सांसारिक भोग और (२) मोक्ष। जब तक देहाध्यास रहता है तब तक मनुष्य सांसारिक भोगों की ओर आकर्षित रहता और अनेक प्रकार के दुःख-सुख उठाता है। काम, क्रोधादि के कारण जो विषय सुख प्रतीत होते हैं, वे ही दुःख रूप बन जाते हैं। क्योंकि सभी सांसारिक सुखों का अन्त दुःख रूप ही होता है।

किन्तु जो मनुष्य उन सब को अहितकर जान लेते हैं वे परमात्मा की प्राप्ति रूप मोक्ष की अभिलाषा करते हैं। ऐसे लोग प्रणव ब्रह्म की उपासना करते हुए एकमात्र उसी की अभिलाषा करते हैं। परमानन्द स्वरूप एवं प्रेम, उल्लास, हर्षादि का जो महासागर है प्रणव ब्रह्म वही अभिलाषा के योग्य है, वही अभिलषित प्रदान करने में समर्थ रहने के कारण अभिलषित है।

(५) घनिष्ठ—

'घनिष्ठ' के अर्थ हैं—अधिक अन्तरंग, प्रगाढ़, अत्यन्त घना, अत्यन्त समीपस्थ आदि। प्राणियों का अन्तरङ्ग एकमात्र वही प्रणव ब्रह्म है, वही घट-घट में समाविष्ट है, इसलिये सभी के अत्यन्त समीप है, निकट-तम है। उससे निकट कहीं कोई नहीं है। 'घन' के अर्थ स्थायी, नित्य, महान्, अभेद्य आदि भी हैं, इसलिये 'घनिष्ठ' से प्रणव ब्रह्म का स्थायी—सदैव एक-सा, अपरिवर्तनीय होना भी सिद्ध है। नित्य का अर्थ भी यही है, जो सदैव रहे, निरन्तर एक रस रहे वही नित्य है। शरीर अनित्य है, इसमें जो आत्मा विद्यमान है वह नित्य है, प्रणव रूप है, क्योंकि प्रणव का ही अंशभूत है। इस प्रकार आत्मा और परमात्मा नित्य ही हैं। वही महान् है, उससे बड़ा तो कोई होगा ही क्या, उसके बराबर भी नहीं हो सकता, और जब महान् है तो उसका भेदन भी कौन कर सकता है? अर्थात् उसका भेदन कोई नहीं कर सकता, इसलिये प्रणव ब्रह्म अभेद्य भी है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



(६) बल—

'बल' के अर्थ हैं—शक्ति, सामर्थ्य, उग्रता, प्रचण्डता, शुक्र, रक्त, अंकुर, सैन्य-समूह आदि। समस्त प्राणियों के शरीरों में एकमात्र प्रणव ब्रह्म की ही शक्ति है। उसी की सामर्थ्य से सब शक्तिमान बने हुए हैं। प्राणियों में जो उग्रता, प्रचण्डता, उत्साह, स्फूर्ति आदि की प्रतीति होती है, वह सब आत्म-बल के ही कारण है। यदि बल न हो तो सब निष्प्राण प्रतीत होंगे। मनुष्यों में ही देखें तो पता चलता है कि जब कोई बीमार हो जाता है तब उसमें शुक्र की, रक्त की या अन्य धातुओं की कमी हो जाती है। उस स्थिति में वह दुर्बल—कमजोर हो जाता है। अधिक दिन बीमार रहने पर तो चारपाई से उठना भी कठिन होता है, क्योंकि कमजोरी बहुत बढ़ जाती है। उठना-बैठना तभी सम्भव होता है, जब शरीर में पुनः शक्ति का—ताकत का आविर्भाव होता है।

वह शक्ति, वह ताकत, वह बल प्रणव ब्रह्म का ही बल है। मनुष्य में जो शक्ति सामर्थ्य है वह उसी की है, अन्य प्राणी भी उसी की शक्ति से शक्तिमान बने हुए हैं। यदि सिंह के शरीर की वह शक्ति क्षीण हो जाय तो वह कभी किसी की हिंसा न कर सकेगा। यह हाथी के देह से वह शक्ति निकल जाय तो वह भी निस्सहाय हो जायगा। इस सब से यही मानना होगा कि सभी का बल एकमात्र प्रणव ब्रह्म है। वही ब्रह्मा, विष्णु, शिव, राम, कृष्ण आदि है। जो लोग इनमें से किसी की उपासना करते हैं वे भी उसी से बल प्राप्त करते हैं। 'निर्बल के बल राम' की मान्यता भी इसी आधार पर प्रचलित हुई।

(७) उद्भव स्थान—

उद्भव का अर्थ है प्राकट्य। प्रकट करने वाला स्थान, स्रोत हो वही उद्भव स्थान है, उसे गर्भ स्थान भी कह सकते हैं। प्रणव ब्रह्म के द्वारा ही समस्त देहधारियों की उत्पत्ति हुई है। यहाँ तक कि सृष्टि का आदि-कर्त्ता ब्रह्मा, जिसे हिरण्यगर्भ और कारण ब्रह्म भी कहते है, उसी परब्रह्म

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran



से उत्पन्न हुआ है। विष्णु, शिव, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, वरुण, कुबेर आदि भी उसी से प्रादुर्भूत हुए हैं। प्रणव शब्द के मध्य में प्रयुक्त 'ण' का एक अर्थ 'जल का गृह' भी है, जिससे व्यक्त होता है कि जल का स्रोत भी वही है। वायु आदि समस्त महाभूतों का स्रोत होना भी जल के स्रोत होने से स्वतः सिद्ध हो जाता है।

देवी भागवत की एक कथा है कि गोलोक में देवताओं का समाज जुड़ा था, भगवान् कृष्ण अपनी प्रियतमा राधा के सहित दिव्यातिदिव्य सिंहासन पर विराजमान थे। सभी नृत्य-गायन-वादन में तल्लीन थे। उस आनन्द में शिवजी भी नाचने-गाने मे निमग्न हो गये। उनका गायन, वादन, नृत्य सभी कुछ अद्भुत था। इस कारण सर्वत्र आनन्द रस की वृष्टि हो रही थी। शिवजी के अद्भुत संगीत-रस में युगलद्वय भी निमग्न हो गये। वे उसमें ऐसे लीन हुए कि द्रवीभूत ही हो गये। उनके शरीर द्रवित होकर जल रूप हुए, जिससे पतित-पावनी गंगा का उद्भव हो गया। इससे सिद्ध है कि 'ण' का जो अर्थ है जल का गृह, वह भी उपयुक्त है। वस्तुतः ब्रह्म प्रणव जल का ही नहीं, सभी प्राणियों का घर है, वहीं से सबका उद्भव है।

## (८) सम्पूर्ण या परिपूर्ण—

परमात्मा ही सम्पूर्ण है, वही परिपूर्ण है, और जब हम परिपूर्ण कहते हैं, तब हमें प्रणव ब्रह्म का तात्पर्याभास होता है. तभी हमारा ध्यान जाता है इस उपनिषद्-वाक्य पर—

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिद पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवाविशिष्यते॥

"प्रणव ब्रह्म सब प्रकार पूर्ण है, यह विश्व भी पूर्ण है, पूर्ण से पूर्ण की उत्पत्ति होती है। पूर्ण से पूर्ण को निकाल लेने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



ब्रह्म सम्पूर्ण है, परिपूर्ण है और उसके अंशभूत जीवात्मा भी उसी के समान परिपूर्ण हैं। जब पूर्ण से पूर्ण निकाल लेते हैं, तब भी उस पूर्ण का कुछ नही घटता; वह तो उतने का उतना ही बना रहता है। किसी समुद्र से निकाल कर देखिये एक बाल्टी पानी, बाल्टी भी भरी होगी समुद्र भी यथावत् रहेगा। आप कह सह सकते हैं कि बाल्टी तो क्षुद्र है, बहुत ही छोटी-सी, वह समुद्र के समान पूर्ण कैसे हो सकती है ? तो उस शंका का समाधान यह है कि उस बाल्टी के पानी का और समुद्र के पानी का रासायनिक विश्लेषण कर देखिये, दोनों में ही तत्वों का समान प्रतिशत मिलेगा। फिर, समुद्र तो सीमित है, उसका असीमित ब्रह्म से मुकाबला ही कैसा ? फिर भी मुकाबला करते हो तो इस प्रकार करो कि समुद्र भी सीमित है और बाल्टी भी सीमित् है। जब दोनों ही सीमित हैं तो छोटाई-बड़ाई का कोई महत्व नहीं। उधर परमात्मा असीमित तो आत्मा भी असीमित, इस कारण यहाँ भी असमानता नहीं बनती। असीमित से असीमित ही निकलेगा, इसलिये पूर्ण से पूर्ण निकलना कहने में भी कुछ अत्युक्ति नहीं।

## (६) विस्तृत—

विस्तृत के अर्थ हैं विस्तार युक्त, फैलावयुक्त, विशाल, व्यापक यथेष्ट विवरण युक्त। प्रणव ब्रह्म की महिमा के रूप में व्यक्त हुआ यह संसार अत्यन्त विस्तार वाला है। उसके फैलाव से ही विशालता का अनुमान किया जा सकता है।

जो संसार जैसे विस्तृत दृश्य प्रपंच को अपने से प्रकट करता है, वह कितने विस्तार वाला होगा, इसका अनुमान लगाया जाना ही सम्भव नहीं। इसलिये कहा जा सकता है कि यदि कोई विस्तृत है तो एकमात्र ब्रह्म ही है, क्योंकि वह असीमित है, व्यापक है और जो असीमित या व्यापक हो वह महानतम ही होगा।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran



विस्तृत का अर्थ जब हम 'यथेष्ट विवरण युक्त' करते हैं, तब साध्य के विस्तृत चरित्रों, विस्तृत नाम-रूपों की ओर हमारा ध्यान जाता है और हमको मानना होता है कि उस परब्रह्म से अधिक चरित्रों और नाम-रूपों वाला कोई हो नहीं सकता। क्योंकि 'हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता' जिसके कार्य ही अनन्त हों, उसके विषय में कोई भी तो कैसे कहे ?

## (१०) आरम्भ—

समस्त विश्व प्रपंच का आदि स्रोत वहीं है। वहीं से संसार का आरम्भ हुआ है। ब्रह्मा तो सर्गारम्भ में उसी प्रकार से निमित्तमात्र है, जैसे कोई कुम्भकार घटादि पात्र बनाने में निमित्त मात्र है, वह उपादान कारण नहीं, वैसी ही स्थिति ब्रह्मा की है। मुख्य कारण तो प्रणव ब्रह्म ही है, वही सब का आरम्भ है यथार्थ रूप से।

उपनिषदों, वेदों, स्मृति-ग्रन्थों आदि में सृष्टि का उद्भव कर्त्ता, पालनकर्त्ता और लयकर्त्ता एकमात्र ब्रह्म ही है, वही प्रणव है, वही ओंकार है, वही परमात्मा है। उसी से सब कुछ व्यक्त होता है और फिर वह सभी उसी में समाविष्ट, उसी में लीन हो जाता है। वह जब सर्गारम्भ करना चाहता है तो पहिले विचार करता है कि मैं एक से अनेक हो जाऊँ—अनन्त हो जाऊँ। उसकी वही इच्छा क्रिया रूप में परिवर्तित होती है, तभी संसार व्यक्त होता है। वही सर्ग का आरम्भ है और आरम्भ करने वाला होने से उस प्रणव ब्रह्म को भी उसकी अद्भुत विशेषता वाले विशेषण के रूप में 'आरम्भ' कह सकते हैं।

## (११) पृथक् या अद्वितीय—

समस्त विश्व का उत्पन्न करने वाला होकर भी प्रणव ब्रह्म अपने द्वारा प्रकट किये हुए विश्व से पृथक् रहता है। वह समस्त देहधारियों में निवास करता हुआ भी उनमें उसी प्रकार लिप्त नहीं होता, जिस प्रकार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



कि कमलपत्र पानी या पानीं में रहकर भी उससे लिप्त नहीं होता। इस प्रकार वह संसार से, इन्द्रियों से, उसके विषयों से सर्वथा परे ही रहता है। संसार में दिखाई देने वाले काम, क्रोधादि विकार उसके स्वाभाविक नहीं हैं, वे तो अध्यास रूप में ही प्रतीति में आते हैं। जब वह अध्यास मिट जाता है, तब कोई भी भ्रान्ति शेष नहीं रहती।

और जब भ्रान्ति ही निर्मूल हो गई तब चित्त ही अस्वच्छ और अस्वस्थ क्यों रहे ? भ्राम्ति के हटते ही ज्ञानी हुआ मनुष्य तुरन्त ही यह जान लेता है कि परमात्मा इस सब से पृथक् है और जो पृथक् है, वह अद्वितीय भी है—बेजोड़ भी है। उसकी समानता कभी कोई नहीं कर सकता।

(१२) निर्णय—

निर्णय के अर्थ हैं स्थिर मत, फैसला, हटाना इत्यदि। प्रणव ब्रह्म का निर्णय प्रकृति रूप में प्रत्यक्ष है। हम देखते हैं कि प्रकृति के नियम अटल हैं, उनमें कभी किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हो पाता। वैज्ञानिक लोग यद्यपि प्रकृति को बदलने का दावा करने लगे हैं, किन्तु उनके प्रयत्नों से प्रकृति में बदलाव न हुआ, और जो बदलाव होना प्रतीत होता है, वह एक भ्रान्ति ही है। उसके फल स्वरूप अनेक प्रकार की हानियाँ उठानी पड़ रही हैं मनुष्यों को। जब बम बिस्फोट होते हैं, तब वातावरण दूषित होता है पर्वत कटते हैं, तब उनके प्रभाव से धरती तक खिसकने लगती है, वृक्ष कटते हैं तो रेगिस्तान की वृद्धि होती है। इस प्रकार यह जितने भी प्रकृति-विरोधी कार्य हैं, हानि के ही कारण हैं।

किन्तु विवेकीजन ऐसे कार्यों से बचते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि प्रकृति का वैभव परमात्मा का ही वैभव है। ज्ञानी पुरुषों का निश्चय है कि सर्वोपरि परमात्मा ही है। योगीजन भी परमात्मा को ही साधना के योग्य मानते हैं। भक्तगण भी भगवान् के रूप में जिसे सर्वस्व मानते हैं,

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran



वह प्रणव ब्रह्म ही है। जापक भी जिसे आराध्य मानकर जप करते हैं, वे भी परब्रह्म का जप करते हैं। सभी मन्त्रों के आदि में प्रणव लगाना अनिवार्य होने के कारण यह सिद्ध है कि सब प्रकार से ब्रह्म रूप में प्रणव ही निर्णय रूप है।

**(१३) अवसान रूप—**

अवसान के अर्थ हैं—मृत्यु, समाप्ति, अन्त, संहार, विराम, रुकावट आदि। विश्राम स्थान या आवास स्थान को भी अवसान कहते हैं। समग्र दृष्टि से देखने पर यह कहा जा सकता है कि सामान्य रूप से इसका अर्थ काल हो सकता है तो विशेष रूप से महाकाल।

प्रणव ब्रह्म सर्व शक्तिमान है वही प्राणियों के जन्म-मरण में मुख्य कारण है। जन्म देने वाला भी वही और मारने वाला भी वही। क्योंकि 'जाको राखे साइयाँ मार सकै ना कोय' जिसकी रक्षा परमात्मा करता है, उसे मारने में कोई भी समर्थ नहीं है। किन्तु जब फल-भोग पूरा होने पर आयु समाप्त होने को होती है, तब परमात्मा भी अपनी रक्षा का हाथ उठा लेता है और स्वयं ही काल रूप हो जाता है। प्राणियों की मृत्यु उसी के हाथ है, इसलिये वही मृत्यु रूप है, वही अवसान रूप है।

और जब हम समष्टि में इस शब्द पर विचार करते हैं, तब अवसान का अर्थ होता है प्रलय। संसार की तीन स्थितियाँ प्रसिद्ध हैं—सर्ग, स्थिति और प्रलय। प्रलय के कर्त्ता हैं सदाशिव, जिन्हें महाकाल भी कहते हैं। इस प्रकार मृत्यु का कारण होने से परमात्मा ही मृत्यु रूप है, वही प्रलय रूप है, वही कालरूप है तो महाकाल रूप भी वही है, वही अवसान रूप है।

**(१४) ऐश्वर्य—**

संसार ही परमात्मा का ऐश्वर्य है। सुषुप्ति अवस्था में यही ऐश्वर्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



परमात्मा में विलीन रहता है और सर्गकाल में उत्पन्न होकर स्थिति-काल में बढ़ता है।

शाब्दिक रूप से ऐश्वर्य के अर्थ हैं—प्रभुत्व, आधिपत्य, अधिकार, शासन, शक्ति, बल, धन, सम्पत्ति, विभव आदि। इनमें से किसी भी शब्द को परमात्मा के पक्ष में लेकर विचार करें तो उससे प्रणवब्रह्म की सर्वश्रेष्ठता, सर्वोपरिता एवं सर्व व्यापकता की सिद्धि होगी। क्योंकि वही ब्रह्म सबका प्रभु है, सभी का शासक है, सभी प्राणी उसी एकमात्र परमात्मा के नियन्त्रण में रहते हुए उसी से शक्ति प्राप्त करते हैं, उसी से पुष्टि प्राप्त करते हैं उसी से अन्नादि प्राप्त करते हैं। वही हमारे लिये स्वास्थ्य देता है, जीवन देता है, प्राण देता है। वही हमारी आयु निश्चित करता है। किन्तु माया-मोह के कारण हम इस तथ्य को जानने में असमर्थ रहते हैं। पर जब जान लेते हैं तब अज्ञान दूर हो जाता है, सभी मोह छूट जाता है और माया भी पलायन कर जाती है। जब ऐसी ज्ञानावस्था उत्पन्न हो जाती है तभी हमें इस तथ्य का निश्चय होता है कि जिस परमात्मा का यह ऐश्वर्य बिखरा पड़ा है सब ओर वह स्वयं ही ऐश्वर्य रूप है।

## (१५) अविभक्त—

परमात्मा एक है, पूर्ण है, सदैव एक रहता है, सदा पूर्ण रहता है, किन्तु जब प्रकट हो जाता है दृश्य प्रपंच के रूप में तब प्रतीत होता है कि वह अनन्त और असंख्य रूपों में विभक्त है। यह सब उसी के भाग हैं, उसी के टुकड़े है जो प्रलय होने पर उसी में मिल कर एक हो जाते हैं।

किन्तु ऐसा कहना किसी रूप में भ्रमोत्पादक हो सकता है। वह असंख्य, अनन्त रूपों में व्यक्त तो होता है, किन्तु तब भी एक ही रहता है। उन सभी रूपों का परस्पर में अनन्यतम सम्बन्ध रहता है, उसी

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran



प्रकार जैसे आप किसी नदी से एक गागर पानी लें तो वह पानी नदी का ही रहेगा जैसे गंगाजल। गंगा में प्रवाह मान जल भी गंगाजल कहलाता है और गंगाजली में भरा हुआ जल भी। इस गंगाजली के जल को पुनः गंगा के प्रवाह में डाल दें तो भी उसकी एकता में अन्तर प्रतीत नहीं होगा।

यह समस्त संसार, उसकी सभी वस्तुएँ, उसमें विद्यमान सभी प्राणी परब्रह्म प्रणव से अभिन्न हैं, इसलिये भी ब्रह्म का अविभक्त होना सिद्ध होता है।

## (१६) आश्रय—

प्रणव ब्रह्म सभी प्राणियों का आश्रय है। जब विश्व महाप्रलय के समय अदृश्य भाव को प्राप्त होता है, तब उसी में आश्रय प्राप्त करता है। किसी भी प्राणी को, किसी भी पदार्थ को ब्रह्म से भिन्न कहीं भी आश्रय नहीं मिल सकता। मिले भी कहाँ से? कोई स्थान दिखाई ही नहीं देता। सभी कुछ बिलीन हो जाता है उस समय। यदि कोई शेष रहता है तो वह है एकमात्र वही प्रणव ब्रह्म। सब कुछ उसी में जाकर विलीन होता है।

इस प्रकार निश्चय होता है सभी का आश्रय वही है, वही सब का शरण स्थल है। जैसे कोई व्यक्ति दिन भर घर से बाहर रहकर काम करता और रात्रि होने पर विश्राम के लिये घर लौटता है, वैसे ही यह ब्रह्म सभी का आश्रय रूप है, सभी की पनाहगाह, सभी का अपना घर है। यह दुनिया तो मुसाफिर खाना है और मुसाफिरखाना हो वहाँ तो अस्थायी निवास ही होता है। स्थायी निवास तो अपने निजी घर में ही सम्भव है।

## (१७) समुद्र—

समुद्र कितना विशाल, कितना गम्भीर होता है, यह तो उसके देखने मात्र से अनुमान हो जाता है। संसार में जल का सब से बड़ा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr



भण्डार तो वही है। उसका एक नाम सागर भी है, जलोदधि भी उसे कहते हैं। शिव भी उसका एक अर्थ है।

समुद्र का एक दूसरा भी अर्थ है—स+मुद्र अर्थात् मुद्रासहित, अंकित। जिस वस्तु पर मोहर लगी हो वह भी समुद्र कही जा सकती है। चार की संख्या को भी समुद्र कहते हैं।

प्रणव परमात्मा समुद्रों का भी समुद्र है। समुद्र की भी सीमा है, किन्तु ब्रह्म असीम है। उसमें लाखों समुद्र आश्रय प्राप्त कर सकते हैं। जब हम समुद्र का अर्थ शिव करते हैं तब उसका अर्थ होता है कि वही साक्षात कल्याणमय है। और जब उसका अर्थ मुद्रा-सहित या मुद्रांकित करते हैं तो उसका अभिप्राय होता है अपनी भावना से। हमारी जैसी भावना होती है वैसा ही आकार हमारी आँखों में नाचने लगता है। 'जाकी रही फावना जैसी हरि मूरत देखी तो तैसी' तो वह मूरत ही मुद्रा है। मुद्रा का आकार, रूप, रंग सब आप पर ही निर्भर है। आप किसी भी रूप में ध्यायें उसे वह अवश्य मिलेगा। क्योंकि समुद्र के समान विशाल हृदय वाला और गम्भीर है वह परमात्मा।

**(१८) कल्याण—**

प्रणव ब्रह्म साक्षात् कल्याण स्वरूप है इसलिए ज्ञानीजन उसे शिव भी कहते हैं। शिव का अर्थ ही कल्याणकारी है। कल्याण शब्द के भी अनेक अर्थ हैं—सुख, सौभाग्य, अभ्युदय, भलाई, स्वर्ग, उपलब्धि आदि।

उस ब्रह्म में यह सभी निहित हैं—सुख मिलेगा तो उसी की कृपा से, सौभाग्य की प्राप्ति हो तो उसी की अनुकम्पा से, अभ्युदय होगा तो उसी के अनुग्रह से, स्वर्ग की प्राप्ति भी उसी की कृपा से हो सकती है। इस प्रकार वही प्रणव ब्रह्म सब प्रकार के कल्याणों का दाता हो सकता है। यही कारण है कि ज्ञानीजन उसी की साधना अनन्यतम रूप से करते हैं।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran



(१६) तुष्टि-साधन—

तुष्टि के सामान्य अर्थ हैं, हर्ष, प्रसन्नता, संतोष, तृप्ति आदि। यह सभी प्रणव ब्रह्म में सदैव विद्यमान रहते हैं। क्योंकि वह साक्षात् आनन्द स्वरूप है, इसलिये हर्ष आदि से विरोधी भाव उसमें कभी नहीं हो सकते। जो साधक प्रणव ब्रह्म की उपासना करते हैं वे भी हर्ष, प्रसन्नता, तृप्ति, तुष्टि आदि से सदा उपकृत रहते हैं। इन सबका उपलब्ध कराने वाला होने के कारण वह ब्रह्म ही तुष्टि-साधन स्वरूप है।

(२०) नाद—

नाद के मुख्य अर्थ हैं—ध्वनि, शब्द, स्वर आदि। अर्धचन्द्र से व्यक्त होने वाला सानुनासिक स्वर भी नाद कहलाता है। वस्तुतः प्रणव ब्रह्म ही साक्षात् नाद ब्रह्म है। सर्गारम्भ में सर्व प्रथम वही व्यक्त होता है और प्रलय काल पर्यन्त व्यक्त ही रहता है। उस शब्द को कान बन्द करके सहज ही सुन सकते हैं। वह शब्द अनहद नाद कहलाता है। वाहर भी जो शब्द गूँजता है, जो ध्वनियाँ सुनाई देती हैं, वे सब प्रणव नाद रूप ही हैं।

(२१) वायु (प्राण)—

वायु पंचमहाभूतों में से एक है। इसका गुण है स्पर्श, किन्तु देहधारियों के शरीर में यही प्राण रूप से विद्यमान है। किन्तु प्राण भी महाप्राण का, समष्टि प्राण का ही अंशभूत है और वह समष्टि महाप्राण है साक्षात् प्रणव ब्रह्म। उपनिषद्-वाक्य है—

ब्रह्मादि स्थावरान्तानां सर्वेषां प्राणिनां खलु।<br>
प्राणः प्रणव प्रणवाय तस्मात्प्रणव ईरितः॥

"ब्रह्मा से स्थावर देहधारियों पर्यन्त समस्त प्राणियों में प्राणरूप से विद्यमान रहने और उन्हें प्राणवान् बनाने के कारण ही उसे प्रणव कहते हैं।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



(२२) नित्य नवीन--

प्रणव ब्रह्म सदा एक रस रहता है, उस पर काल का प्रभाव कभी नहीं पड़ता, इसलिये वह कभी पुराना नहीं होता, कभी प्रौढ़ या वृद्ध भी नहीं होता। वह सदैव नया, ताजा, पूर्ववत् स्फूर्ति सम्पन्न रहने के कारण नित्य नवीन बना रहता है। वास्तव में नित्य नवीन कहलाने का अधिकारी वही है। उसी का भगवान् शंकर ने 'नित्य नूतन विग्रह' कहा है।

(२३) स्त्रोत्र—

स्तोत्र का मुख्य तात्पर्य प्रशंसात्मक गान से है। जिस मंत्र में, जिस वचन में स्तुत्य की स्तुति हो, वह स्तोत्र कहलाता है। प्रणव ब्रह्म को साक्षात् स्तोत्र या स्त्रोत्र रूप कहने का कारण यह है कि उसकी असीम महिमा का गायन वाणी पूर्ण रूप से करने में असमर्थ है। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी उसे समग्र रूप में देख सुन नहीं पाये और न उसका उतना अनुभव ही कर पाये कि उसे वाणी से कह सकें। स्वयं उसी की महती महिमा स्तोत्र रूप से प्रत्यक्ष है, इस कारण वह स्वयं ही स्तोत्र रूप है।

(२४) ज्ञान—

प्रणव ब्रह्म स्वयं ही साक्षात् ज्ञान स्वरूप है। जितने भी ज्ञान-वचन हैं, वे सब उसी का ज्ञान कराने के उद्देश्य से कहे-सुने जाते हैं। मनु का वचन है—बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति' 'ज्ञान के द्वारा बुद्धि का शोधन होता है। किन्तु उस ज्ञान का तात्पर्य भौतिक विज्ञान से नहीं है। क्योंकि भौतिक विज्ञान या ज्ञान तो भ्रमित करने वाला है। उसके द्वारा मनुष्य के कृतित्व के प्रति प्रशंसाभाव जाग्रत् होता है। जबकि ब्रह्म के ज्ञान से ब्रह्म की प्राप्ति होती है। अनेकानेक श्रुतियाँ उसे 'ज्ञान स्वरूप' कहती हैं।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



(२५) प्रकृष्ट—

'प्रकृष्ट' शब्द के मुख्य अर्थ हैं—उत्कृष्ट, आकृष्ट, दीर्घ, लम्बा आदि। प्रणव ब्रह्म समस्त संसार को उत्पन्न करके उसमें व्याप्त रहता हुआ भी उसमें लिप्त नहीं होता, इसलिये वह उत्कृष्ट है। समस्त विश्व उसी के आकर्षण में बँधा हुआ है—'आकृष्णेन रजसा' उसी की किरणों से आकृष्ट हुआ ठहरा हुआ है, इसलिये वह स्वयं ही आकृष्ट है। उससे अधिक दीर्घ और लम्बा कोई अन्य नहीं, इसलिये वही इन विशेषणों का अधिकारी है। भगवान् शंकर ने भी कहा है—'प्रकृष्ट नूतनो वर्णो' अर्थात् प्रणव ही प्रकृष्ट है, नवीन है, वर्णात्मक है।'

इस प्रकार प्रणव ब्रह्म ही परमात्मा होने से सबका अधीश्वर, सबका स्वामी है। वही 'अपूर्वोऽनन्तरो बाह्यो' वही अपूर्व है वही बाहर-भीतर है। वही आत्मा रूप से समस्त देहधारियों में विराजमान है। अनन्त रूप होने के कारण अनन्त नाम तथा अत्यन्त नाम तथा अनन्त अर्थ वाला है।

---

# ओंकार का अर्थ-विचार

## ओंकार की अनुकृति-संसार—

अब ओंकार के अर्थ पर विचार करते हैं। यद्यपि प्रणव और ओंकार में अभेद है तो भी शब्द-भेद के कारण अर्थ-भेद प्रतीत होना भी स्वाभाविक है। फिर यदि दोनों के अर्थ पर सम्मिलित रूप से विचार किया जायगा तो स्पष्ट ही उनका ऐक्य परिलक्षित होने लगेगा। तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है—

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr



ओमिति ब्रह्म । ओमितीदं सर्वम् । ओमित्येतदनुकृतिह स्म वा अप्य श्रावयेत्माश्रवयन्ति । ओमिति सामानि गायन्ति । ओं शोमिति शस्त्राणि शंसन्ति । ओमित्यध्वर्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति । ओमिति ब्रह्मा प्रसौति । ओमित्यग्निहोत्रमनुजानाति । ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह ब्रह्मोपाप्नवानीति । ब्रह्मैवोपाप्नोति ।

ओम् ब्रह्म है, ओम् ही यह सम्पूर्ण विश्व प्रपंच है, ओम् ही परब्रह्म की अनुकृति है । इसलिये हे गुरुदेव ! ओम् के विषय में ही सुनाओ । क्योंकि ओम् से ही सामगान करने वाले सामगान करते हैं । ओम् शोम् का उच्चारण करते हुए ही शास्त्रों का अध्ययन किया जाता है । ओम् के द्वारा ही अध्वर्यु प्रतिगर मन्त्र का आरम्भ करता है। ओम् कहकर ही ब्रह्मा यज्ञ आरम्भ करने की अनुमति देता है । ओम् से ही अग्निहोत्र की आज्ञा दी जाती है । ओम् का उच्चारण करता हुआ अध्ययन करने वाला ब्राह्मण ब्रह्म को प्राप्त करने की बात कहता है । ओम् के द्वारा ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है ।

प्रश्नोपनिषद् में महर्षि पिप्पलाद द्वारा सत्यकाम को ओंकार ध्यान-साधना और उसके सत्परिणामों द्वारा उपदेश का वर्णन मिलता है, जिसमें सत्यकाम महर्षि पिप्पलाद से प्रश्न करता है—

स यो ह वै तत्भागवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोंकारमभिध्यायीत । क तमं वाव स तेन लोकं जयतीति ?

"भगवन् ! जो मनुष्य शरीरान्त होने तक ओंकार का भले प्रकार ध्यान करता है, वह उसके द्वारा किस लोक पर विजय प्राप्त करता है ?" इस प्रश्न के उत्तर में महर्षि कहते हैं—

परं च अपरं च ब्रह्म यदोंकारः । तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति ।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभि सम्पद्यते। तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति।

अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते सोमलोकम्। स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्तते।

यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीय स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः। यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते तदेतौ श्लोकौ भवतः।

"यह ओंकार ही परब्रह्म है, यही अपरब्रह्म है, ऐसा जान लेने वाला मनुष्य इसी एक प्रयास में ब्रह्म के साथ एक रूपत्व प्राप्त कर लेता है। यदि वह एक मात्रा वाले ओंकार का ही ध्यान करे तो वह उसके द्वारा शीघ्र ही पृथिवी पर प्राप्त होजाता है। उसे मनुष्य देह की प्राप्ति कराने वाली ऋग्वेद की ऋचाएँ होती हैं। वह ब्रह्मचर्य से युक्त एवं श्रद्धा से समन्वित होता हुआ महिमावान् होजाता है। यदि दो मात्रा वाले ओंकार का ध्यान करे तो चन्द्रलोक की प्राप्ति होती है। उसे यजुर्वेद के मंत्र वहाँ ले जाते हैं। वह वहाँ का सुख भोग कर पुनः इस मनुष्य लोक में आजाता है। तीन मात्राओं वाले ओंकार का ध्यान करे तो तेजोमय सूर्यलोक की प्राप्ति होती है। सर्प से जैसे केंचुली छूटती है, वैसे ही वह मनुष्य पापों से छूट कर सामवेद के द्वारा ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है। वह इन प्राणियों से अत्यन्त श्रेष्ठ परात्पर ब्रह्म से साक्षात्कार करता है। इस विषय में आगे के श्लोक प्रतिपादक हैं—

तिस्रो मात्रामृत्युमत्यः प्रयुक्ता
अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु
सम्यक् प्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः ।।
ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं
सामभिर्यत् तत्कवयो वेदयन्ते ।
तमोंकारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान्
यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति ।।

"ओंकार की तीनों मात्राएँ परस्पर में सम्बद्ध रहती हुई प्रयुक्त होने पर मनुष्य दृढ़ संकल्प होता हुआ परमात्मा का ज्ञाता बन जाता है। एक मात्रिक ओंकार की उपासना ऋचाओं के द्वारा मर्त्यलोक की ही प्राप्ति कराती है, द्विमात्रिक ओंकार की उपासना यजुर्मन्त्रों द्वारा चन्द्रलोक प्राप्त कराती है, किन्तु तीनों मात्रा वाले पूर्ण ओंकार की साधना सामश्रुतियों के द्वारा ब्रह्मलोक में ले जाती है। उस ब्रह्मलोक को केवल ज्ञानी पुरुष ही जानते हैं। विद्वान् साधक ओंकार के ध्यान द्वारा ही परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। वही परमात्मा अजर, अमर, अभय, शान्त एवं सर्वश्रेष्ठ है।"

## प्राणरूप से प्रतिष्ठित ओंकार—

अथर्वशिरोपनिषद् में रुद्रलोक का एक वृत्तान्त है, जिसमें देवगण वहाँ जाकर भगवान् रुद्र की स्तुति करते हुए कहते हैं—

हृदिस्था देवताः सर्वा हृदि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ।
हृदि त्वमसि यो नित्यं तिस्रो मात्राः परस्तु सः ।।

तस्योत्तरतः शिरो दक्षिणतः पादौ, य उत्तरतः स ओंकारः, य ओंकारः स प्रणवः, य प्रणवः स सर्वव्यापी, य सर्वव्यापी सोऽनन्तः सोऽनन्तस्तत्तारं, यत्तारं तत्सूक्ष्मं. यत्सूक्ष्मं तच्छुक्लं, यच्छुक्लं तद्वैद्युतं, यद्वैद्युतं तत्परंब्रह्म, यत्परं ब्रह्म स एकः, य एकः स रुद्रः, यो रुद्रः स ईशानः, य ईशानः स भगवान् महेश्वरः ।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran



"समस्त देवताओं के हृदयों में प्राण रूप से आप ही प्रतिष्ठित हैं। हृदयों में आप ही तीन मात्राओं सहित निवास करते हुए भी उनसे परे हो। उत्तर में उसका सिर तथा दक्षिण में पाँव है। जो उत्तर में है वही ओंकार है, जो ओंकार है वही प्रणव है, जो प्रणव है, वह सर्वव्यापी है। जो सर्वव्यापी है वह अन्नत है, जो अनन्त है, वही तारक है, जो तारक है, वह सूक्ष्म है, जो सूक्ष्म है वह शुक्ल है, जो शुल्क है, वही विद्युत् है, जो विद्युत् है वही परब्रह्म है, जो परब्रह्म हैं वह एक है, जो एक है वह रुद्र है, जो रुद्र है वह ईशान है, जो ईशान है वही भगवान् महेश्वर हैं।"

इससे स्पष्ट हुआ कि ओंकार और प्रणव एक ही परब्रह्म के वाचक हैं। जहाँ सर्वव्यापी, अनन्त, तारक, सूक्ष्म, शुल्क आदि विशेषणों का प्रयोग हो वहाँ वह प्रयोग ओंकार के प्रति ही समझना चाहिए। विद्युत् भी ओंकार है, क्योंकि उसमें जो चमक है, ओंकार की ही हैं। वही एकमात्र—अद्वैत परब्रह्म है, जिसे रुद्र कह लें, ईशान कह लें, महेश्वर कह लें, अन्यथा किन्हीं अन्य नामों से सम्बोधित कर लें। ब्रह्मा भी वही है, विष्णु भी वही है, इन्द्र और वरुण, कुवेर, यम तथा शक्ति भी वही है।

ब्रह्मविद्योपनिषद् में ओंकार को समस्त कामनाओं का निवारण करने वाला कहा गया है, यथा—

कांस्य घंटानिनादस्तु यथा लीयति शान्तये।
ओंकारस्तु तथा योज्यः शान्तये सर्वमिच्छता॥

"जैसे कांसी के घण्टा का नाद लीन होने पर शान्ति उत्पन्न करने वाला होता है, वैसे ही ओंकार को अपने में योजित कर लेने पर सभी इच्छाएं शान्त होजाती हैं।" इसका अभिप्राय है कि ओंकार ही परम शान्ति है। उसके बिना शान्ति हो ही नहीं सकती। जब तक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



इच्छाएँ रहती हैं, तब तक ओंकारमयी निष्ठा सुदृढ़ नहीं होपाती। मन के एकाग्र होने पर जब निष्ठा सुदृढ होती है तब अशान्ति का पूर्ण रूप से शमन होजाता है।

## शिव तत्व का प्रत्यक्ष स्वरूप--

प्रणवोपनिषद् में ओंकार रूप एकाक्षर ब्रह्म का निरूपण करते हुए कहा है कि--

तत्र देवास्त्रयः प्रोक्ता लोका वेदास्त्रयोऽग्नयः।
तिस्रो मात्रार्धमात्रा च प्रत्यक्षस्य शिवस्य तत् ॥
ऋग्वेदो ग्राहंपत्यं च पृथिवी ब्रह्म एव च।
अकारस्य शरीरं तु व्याख्यातं ब्रह्मवादिभिः ॥
यजुर्वेदोन्तरिक्षं च दक्षिणाग्निस्तथैव च।
विष्णुश्च भगवान् देव उकारः परिकीर्तितः ॥
सामवेदस्तथा द्यौश्चाहवनीयस्तथैव च।
ईश्वरः परमो देवो मकारः परिकीर्तितः ॥

"उस ओंकार में तीन देवता, तीन लोक और तीन अग्नियों का होना कहा गया है। साथ ही उसमें तीन मात्राएँ और आधी मात्रा भी है। वस्तुतः वह शिवतत्व का ही प्रत्यक्ष स्वरूप है। ऋग्वेद, गार्हपत्य अग्नि, पृथिवी तथा ब्रह्म—यह तत्व ब्रह्मवादियों ने ओंकार के प्रथम अक्षर 'अकार' में बताये हैं। अर्थात् ऋग्वेद, गार्हपत्याग्नि, पृथिवी और ब्रह्मा सभी ओंकार की प्रथम मात्रा अकार में समाविष्ट हैं अथवा यह सब अकार रूप ही हैं। यजुर्वेद, आकाश, दक्षिणाग्नि और भगवान् विष्णु उकार में समाविष्ट हैं। तात्पर्य यह कि इन चारों में ओंकार की दूसरी मात्रा उकार व्याप्त है। सामवेद, स्वर्गलोक, आवाहनीय अग्नि और परमदेव शिव—इन चारों में मकार विद्यमान है। तात्पर्य यह है कि सामवेद, स्वर्गलोक, आवाहनीय अग्नि और भगवान् शंकर मकार

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



स्वरूप हैं। इस प्रकार जिस मात्रा में जिस-जिसका होना कहा है, उस उसकी प्राप्ति सम्बन्धित मात्रा की उपासना बिना नहीं हो सकती ब्रह्म-विद्योपनिषद् ने तो बहुत ही स्पष्ट कहा है—

बन्ध मुद्रा कृता येन नासाग्रे तु स्वलोचने।
अकारे वह्निरित्याहुरुकारे हृदि संस्थितः॥
मकारे च भ्रुवोर्मध्ये प्राणशक्त्या प्रबोधयेत्।
ब्रह्मग्रन्थिरकारे च बिष्णु ग्रन्थि हृदि स्थितः॥
रुद्रग्रन्थि भ्रुवोर्मध्ये भिद्यतेऽक्षर वायुना।
अकारे संस्थितो रुद्रस्ततोऽस्यान्तः परात्परः।
कण्ठं संकुच्य नाड्यादौ स्तम्भिते येन शक्तितः॥
रसना पीड्यमानेयं षोडशीवोर्ध्वगामिनी।
त्रिकूटं त्रिविधं चैव गोलाखं निखरं तथा॥
त्रिशंखं वज्रमोंकारं ऊर्ध्वनालं भ्रुवोर्मुखम्।
कुण्डली चालयन्प्राणान् भेदन शशिमण्डलम्॥

"बन्ध और मुद्रा का अभ्यास करने पर जिसके अपने नेत्रों में जिसकी प्रतीति हो, उस अग्नि को 'अकार' कहते हैं। आँखों में जो रूप देखने की शक्ति है, वह अकार मात्रा वाली अग्नि की ही शक्ति है। आँखों में अग्नि का होना सभी पंचमहाभूत-ज्ञाता महर्षियों ने माना है। रूप गुण अग्नि का ही है।

उकार में जो अग्नि है वह हृदय में रहती है। वही अग्नि हृदय को गतिमान रखती हुई रक्तसंचार क्रिया में मुख्य कारण होती है। उसी के द्वारा गतिमान हुआ हृदय अशुद्ध रक्त के आने पर फुफ्फुसों को प्रेषित करता है और फुफ्फुसों से शुद्ध होकर आये हुए रक्त को समूचे शरीर में पहुँचा देता है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr



मकार में विद्यमान अग्नि भौंहों के मध्य रहती है। यही स्थान योगियों के मत में आज्ञाचक्र है। जब तक यह चक्र प्रसुप्त पड़ा रहता है, तब तक मनुष्य की प्रतिभा प्रखर नहीं होती। इसीलिये उपनिषत्कार ने कहा है कि इन-इन अङ्गों में प्राणशक्ति को संलग्न करना चाहिये।

ब्रह्मग्रन्थि 'अकार' नासाग्र और आँखों में है, यदि हम अपने मुख को चारों ओर घुमायें तो सब ओर का दृश्य दिखाई दे सकता है। ब्रह्माजी को अपने द्वारा रचित समस्त सृष्टि को देखने-सूँघने आदि की सुविधा रहनी अपेक्षित है। उस सुविधा के सहज ही उपलब्ध रहने के कारण उन्हें पुराणकारों ने चतुर्मुख या चतुरानन नाम दिया था।

विष्णु-ग्रन्थि हृदय में और रुद्र-ग्रन्थि भौंहों के मध्य स्थित हैं। इन ग्रन्थियों के भेदन अक्षर रूप वायु से ही हो सकता है। अकार में ब्रह्मा, उकार में विष्णु और मकार में रुद्र का स्थान है। उसके अन्त में परात्पर ब्रह्म है।

अब इसका उपाय बताते हैं—कण्ठ का संकोचन करके नाड़ी शक्ति को स्तम्भित करे। फिर जिह्वा को दबाकर सोलह आधार वाली, ऊर्ध्वगामिनी, त्रिकूट, तीन प्रकार की, ब्रह्मरन्ध्र की ओर जाने वाली सूक्ष्म सुषुम्ना नाड़ी को, तथा त्रिशंख, वज्र, ओंकारमय, ऊर्ध्वनाल रूप, भौंहों की ओर जाने वाली कुण्डलिनी शक्ति तथा प्राणों को चालित करके शशिमण्डल का भेदन करे।"

यह कुण्डलिनी जागरण की ही एक विधि हैं, जिसमें ओंकार की मात्राओं के आश्रय से आत्मा रूप ओंकार से साक्षात्कार किया जा सकता है। ब्रह्मोपनिषद् का इस विषय में मत है—

आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद् एवं पश्येन्निगूढवत ॥

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



"आत्मा को नीचे की अरणि बनाकर प्रणव को ऊपर की अरणि बनावे और तब ध्यान रूपी मन्थन के अभ्यास से इस छिपे हुए के समान आत्मा का साक्षात्कार करे।"

वस्तुतः आत्मा है वह भी ओंकार है, परमात्मा है वह भी ओंकार है। किन्तु देहाध्यास के कारण प्रपंच में मोहित हुए मनुष्य इस विषय में अनजान बने हुए हैं। कठोपनिषद् में ब्रह्मविद्या का उपदेश देते हुए यम ने नचिकेता से कहा था—जिस परमपद का प्रतिपादन वेद करते हैं तथा समस्त तप जिसका आभास कराते हैं, जिसकी कामना से साधकगण ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं, उस पद को संक्षेप से तुम्हारे प्रति कहता हूँ।

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य यत्॥
एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते॥

"यही अक्षर ब्रह्म है, यही परब्रह्म है, अतः इस अक्षर का ज्ञान प्राप्त होने पर साधक जो इच्छा करे वही उसे मिल सकता है। यही एक श्रेष्ठ आलम्बन है, यही परम आलम्बन है। इस आलम्बन को जान लेने वाला साधक ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित होता है।

तात्पर्य स्पष्ट है—अक्षर ब्रह्म अर्थात् अविनाशी परमात्मा अथवा वर्णरूप परमात्मा। वर्ण में स्वर भी समाविष्ट होजाते हैं—'अ' और 'उ' तथा 'म' तो वर्णमाला के अन्तर्गत है ही। अर्थात् 'अ' और 'उ' स्वर हैं तथा 'म' है व्यंजन। जहाँ स्वर है वहाँ ध्वनि है और जब ध्वनि में स्वर-व्यंजन दोनों का योग होजाय तब तो सुन्दर नाद का—श्रेष्ठ संगीत का व्यक्त होना स्वाभाविक ही है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr



## एकाक्षर ब्रह्म ही ध्येय है—

ध्यान बिन्दूपनिषद् ने इसके विवेचन में बताया है कि ओंकार की मात्राओं में त्रिदेव भी निमग्न हैं। यथा—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ध्येयं सर्वं मुमुक्षिभिः।
पृथिव्याग्निश्च ऋग्वेदो भूरित्येव पितामहः॥
अकारे तु लयं प्राप्ते प्रथमे प्रणवांशके।
अन्तरिक्ष यजुर्वायुभुवो विष्णु जनार्दनः॥
उकारे तु लयं प्राप्ते द्वितीये प्रणवांशके।
द्यौः सूर्यः सामवेदश्च स्वरित्येव महेश्वरः॥
मकारे तु लयं प्राप्ते तृतीये प्रणवांशके।
अकारः पीतवर्णः स्याद् रजोगुण उदीरित॥
उकारः सात्विकः शुक्लो मकारः कृष्णतामसः।
अष्टांगं च चतुष्पादं त्रिस्थानं पञ्चदैवयम्॥
ओंकार प्रभवाः देवाः ओंकार प्रभवाः स्वराः।
ओंकार प्रभवं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥

"सभी मुमुक्षी मनुष्य ओंकार रूप एकाक्षर ब्रह्म को ही ध्येय (ध्यान के योग्य) मानते हैं। प्रणव के इस प्रथम अंश 'अकार' में पृथिवी, अग्नि, ऋग्वेद और भूलोक के साथ पितामह ब्रह्मा का लय होता है। दूसरे अंश 'उकार' में अन्तरिक्ष, यजुर्वेद, वायु, भुवर्लोक तथा जनार्दन भगवान् विष्णु का लय होता है। तीसरे अंश 'मकार' में द्युलोक (स्वर्ग) सूर्य, सामवेद, स्वर और महेश्वर का लय होता है। 'अकार' पीले वर्ण का रजोगुणी कहा गया है। 'उकार' श्वेत वर्ण का सतोगुणी तथा 'मकार' कृष्ण वर्ण का तमोगुणी है। इस प्रकार ओंकार का आठ अंग, चारपाद, तीन नेत्र और पाँच दैवत वाला मानते हैं। ओंकार से ही समस्त देवता उत्पन्न हुए हैं, ओंकार से ही समस्त स्वर उत्पन्न हुए हैं। चराचर युक्त यह तीनों लोक भी ओंकार से ही प्रादुर्भूत हैं।"

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr



इससे सिद्ध है कि यह व्यक्त जगत् अव्यक्त ओंकार का ही कार्य है। यह जितनी भी उत्पत्ति, पालन और विनाश की क्रियाएँ होती प्रतीत होती हैं, सभी का कारण ओंकार है। ओंकार ही वह वृत्त है जिसमें यह विश्व चक्र घूमता है जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीयावस्था के साथ। प्रथम तीनों अवस्थाएँ उसके आधे वृत्त में घूमती हैं और पूरी चौथी अवस्था उससे भिन्न आधे वृत्त में। अर्थात् जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति का सम्बन्ध संसार से है, जबकि तुरीयावस्था का सम्बन्ध संसार से नहीं है, अव्यक्त ब्रह्म से है। क्योंकि संसार व्यक्त है, इसलिये उसकी अवस्थाएँ भी व्यक्त हैं, तुरीयावस्था व्यक्त न होने के कारण संसार से परे है। अव्यक्त ब्रह्म जब एक से बहुत होने की इच्छा करता है, तब वह अपने स्फुरण से प्रकट करता है विश्व को, वही जाग्रतवस्था है। उसमें परब्रह्म का व्यक्त रूप से प्रतिनिधित्व करता है चतुरानन ब्रह्मा। वही प्रजापति है, वही कार्य ब्रह्म है। यह जाग्रत्-अवस्था जब समष्टि रूप से होती है, तब उसका अर्थ होता है सर्गारम्भ, किन्तु जब व्यष्टि रूप में होती है, तब उसका अर्थ होता है सोते हुए मनुष्य का जागरण, जो कि नित्य प्रति देखते हैं। सोते से मनुष्य ही नहीं जागते, सभी प्राणी जागते हैं। यह तथ्य भिन्न है कि मनुष्य के सोने के लिये रात्रि और जागने के लिये प्रातः काल नियत है। फिर भी सभी मनुष्य उस नियम का पालन नहीं कर पाते। विशेषकर इस युग में जबकि चौबीसों घण्टे कल कारखाने चलते हों अथवा दिन में विद्युत्-ऊर्जा न मिलने के कारण रात्रि में कार्य करने के लिये बाध्य होना पड़ता हो।

किन्तु अन्य प्राणियों पर इस बन्धन का प्रभाव नहीं है। वे अपने-अपने स्वाभानुसार सोते-जागते हैं। मच्छर आदि को ही लें—वे रात में ही परेशान करते हैं। उनका जागरण रात भर चलता रहता है। इसी प्रकार अन्यान्य जीव-जन्तु भी अपनी-अपनी प्रकृति के अधीन हैं।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr



संसार व्यक्त होता है तो यह जागरण है, स्थित रहता है तो यही स्वप्नावस्था है। मनुष्य अर्ध निद्रित अवस्था में अनेक प्रकार के स्वप्न देखता है। किन्तु वे स्वप्न सोने पर विलीन होजाते हैं और जानने पर भी। इसी प्रकार संसार में यह जो चराचर रूप विभिन्न प्रकार के प्राणी, विभिन्न प्रकार के वैभव युक्त दृश्य—पहाड़, नदी, सरोवर, समुद्र, वृक्ष, समतल भूमि, बड़े-छोटे भवन, अनेक प्रकार की सवारियाँ आदि दिखाई देते हैं वे सभी स्वप्न के समान है। वे सभी सुषुप्ति में—प्रलय में खो जाते हैं और उस समय भी प्रायः प्रकट नहीं होते जब सर्गारम्भ होता है। उनकी व्यक्तता तो धीरे-धीरे ही होपाती है। इसीलिये यह विश्व न तो सुषुप्ति में रहता है ओर न जाग्रत् में ही। रहता है स्थिति काल में, इसलिये समष्टि रूप में तो यह विश्व भी स्वप्न है, किन्तु व्यष्टि रूप में स्वप्न वह है जो न जागते में दिखाई देता है, न सोते में दिखाई देता है।

वैसे तो मनुष्य जागते में भी अनेकों स्वप्न देखता है और वे स्वप्न भी उतने ही क्षणिक होते हैं, जितने शयन समय सोते हुए दिखाई देने वाले स्वप्न। मनुष्य की महत्वाकांक्षाएँ ही उन स्वप्नों का सृजन करती हैं, वही उनके लिये संसार खड़ा करती हैं। महत्वाकांक्षाएँ जन्म-मरण के चक्र में घुमाती हैं।

सुषुप्ति का अर्थ है सोना। व्यष्टि रूप में तो सभी नित्य-प्रति सोते हैं, किन्तु समष्टि रूप में सुषुप्ति का रूप है प्रलय। प्रलय का अर्थ वही नहीं है कि युगों की समाप्ति पर ही होती रहें। जो चार युगों की समाप्ति पर होती है, उसे हमारे शास्त्रों में महाप्रलय कहा है। पर, हम देखते हैं अनेक छोटी-बड़ी दुर्घटनाएँ घटित होती हुई। कहीं भूस्खलन में दबकर मर गये मनुष्य, पशु आदि, कहीं रेल-दुर्घटना में, कहीं बाढ़ और तूफान में। कहीं अतिवृष्टि हुई तो कहीं सूखा पड़ गई, जिससे अन्न का

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



अभाव होगया और अन्त के अभाव में मरने वालों की संख्या भी संसार में कम नहीं हैं। अभी एक समाचार था कि अत्यन्त धनवान देश अमेरिका में ही भूख से मरने वालों की संख्या पर्याप्त है।

मृत्यु किसी भी प्रकार हो, है जीवन का अन्त ही। समष्टि रूप में वही सुषुप्ति है। जब जीवन समाप्त होजाता है तब प्राणी शरीर-विहीन रहता है--एकदम बेहोश। क्योंकि शरीर के साथ ही संसार-सम्बन्धी होश होपाता है उसे। वह अवस्था ही तुरीयावस्था है, वह तब तक रहती है, जब तक प्राणी पुनर्जन्म नहीं ले लेता। समष्टि रूप में प्रलय के पश्चात् जब संसार परब्रह्म में जाकर विलीन रहता है तब उसकी तुरीयावस्था मानी जाती है।

इस प्रकार जो मृत्यु है, वह सुषुप्ति के समान है। मृत्यु में भी जीव बेहोश होजाता है और सुषुप्ति में भी उसे होश नहीं रहता। किन्तु अनेक व्यक्तियों की नींद अधिक बेहोशी वाली नहीं होती, वे जरा-सा खटका होते ही जाग उठते हैं। उन्हें जगाने के लिये अधिक प्रयत्न नहीं करना होता। जबकि कुछ लोग इतने बेहोश सोते हैं कि उन्हें कितना ही पुकारो, कान पर शब्द करो बाजे आदि का, तो भी सहज में उठ नहीं पाते।

## मोक्षदायक अर्ध मात्रिक ब्रह्म–

ऋषियों का सदैव यह निर्देश रहा है कि अपनी चेतना को प्रखर बनाये रहो। चेतना प्रखर रहती है तो मनुष्य बेहोशी में अधिक नहीं डूबता। कुछ व्यक्ति तो मरते दम तक होश में रहते हैं, और जो मरते समय होश में रहते हैं, उनका पुनर्जन्म भी होश में होता है। सुना होगा आपने कि अमुक व्यक्ति को पिछले जन्म की याद रही। उसने बताया कि मैं पहिले किस गांव, शहर, मुहल्लों, परिवार आदि में था।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr



विवाहित था या अविवाहित—विवाहित था तो पत्नी, पुत्र एवं अन्य परिवारी जनों के विषय में भी बहुत-सी बातें बताईं। जाँच करने वालों ने पाया कि उसका बताया हुआ विवरण सही था। उसे ले जाया गया पूर्वजन्म वाले परिवार में तो उसने सबको पहिचान लिया और कुछ ऐसी बातें भी बताईं, जिन्हें सब लोग नहीं जानते थे। ऐसी घटना एक नहीं, अनेक सामने आ चुकी हैं और समय-समय पर समाचार पत्रों में भी पढ़ने को मिलती रहती हैं।

होश पूर्वक जीने-मरने में मन बहुत सहायक होता है। मन जितना अधिक एकाग्र होगा, उतना ही अधिक होश रहेगा। उसके लिये योगियों ने अनेक क्रियाओं का वर्णन किया, जिनमें ध्यान प्रमुख है। ध्येय का ध्यान करने से मन एकाग्र होता है और अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है। यदि ओंकार का ध्यान किया जाय तो सभी भौतिक कामनाएँ पूर्ण होती हैं, मोक्ष की भी प्राप्ति हो सकती है। ध्यान बिन्दु-उपनिषद् के मतानुसार ही—

ह्रस्वो दहति पापानि दीर्घः सम्पत्प्रदोऽव्ययः।
अर्धमात्रा समायुक्तः प्रणवो मोक्षदायकः॥

"ओंकार का ह्रस्व अंश ध्यान किया जाने पर पापों को भस्म कर देता है। दीर्घ अंश अव्यय (नष्ट न होने वाली) सम्पत्ति प्रदान करता है और अर्धमात्रा युक्त ओंकार मोक्ष का देने वाला होता है।"

और क्या चाहिये मनुष्य को? सभी कुछ तो प्राप्त होजाता है ओंकार-साधना से। सांसारिक भोगों में लिप्त रहने से पापों की उत्पत्ति होती है, जो धर्म-पुण्य को ही दग्ध कर देते हैं। किन्तु ओंकार ह्रस्व जप-ध्यान उन सब पापों को नष्ट करके धर्म की रक्षा करता है। यदि जप-ध्यान किया जाय तो सब प्रकार की सम्पत्ति—धन, ऐश्वर्य, भवन, वाहन, पद, प्रतिष्ठा आदि की उपलब्धि होजाती है। धन का तात्पर्य

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



अर्थ से है, मनुष्य की अर्थ व्यवस्था ठीक हो तो उसे पत्नी, भवन आदि किसी वस्तु की कमी नहीं रहती।

## चार पुरुषार्थ और ओंकार–

आपको ज्ञात होगा ही कि चार पुरुषार्थ प्रसिद्ध हैं—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। यह चारों ही कर्तव्य रूप से निर्दिष्ट हैं मनुष्य के लिये। ओंकार के ह्रस्व और दीर्घ साधन से धर्म, अर्थ और काम—तीनों की ही प्राप्ति हो जाती है। अब, शेष रहती है मोक्ष, जो की जीवन का अन्त होने पर मिलने से मनुष्य सब प्रकार से कृतार्थ हो जाता है। इसीलिये ज्ञानीजन सदा कहते रहते है कि इस मनुष्य जीवन में ही मोक्ष-प्राप्ति का उपाय कर लो, पता नहीं इस शरीर के छूटने पर मनुष्य शरीर पुनः मिले या न मिले।

मोक्ष-प्राप्ति के लिये अनेक प्रकार के उपाय किये जाते हैं—कोई भगवान् विष्णु की उपासना करता है, कोई शिव की तो कोई शक्ति की। कोई राम की, कोई कृष्ण की, कोई नृसिंह की तो कोई वराह या वामन आदि की उपासना कर रहा है। कोई सूर्य को ही ईश्वर मानता है तो कोई इन्द्र को या चन्द्रमा को। और भी अनेकानेक देवता पूजे जाते हैं संसार में 'प्रणवो मोक्षदायकः' कह कर उसी की उपासना का संकेत किया गया है।

ओंकार के प्राकट्य के विषय में छान्दोग्योपनिषद् में एक वृत्तान्त मिलता है—

प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयी विद्या संप्रास्रवत्तामभ्यतपत्तस्या अभितप्ताया एतान्यक्षराणि संप्रास्रवन्त भूर्भुवस्वरिति। तान्यभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्य ओंकारः संप्रास्रवत्तद्यथा शंकुना सर्वाणि पर्णानि संतृण्णान्येवमोंकारेण सर्वावाक्संतृण्णोंकार एवेदं सर्वमोंकार एवेदं सर्वम्॥

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



"प्रजापति ने लोकों को उत्पन्न करने के उद्देश्य से तप आरम्भ किया तथा ध्यान किया जाने पर उस तप से ऋक्, यजुः और सामइन तीन विद्याओं की प्रतीति हुई। तब प्रजापति ने तीनों विद्याओं का ध्यान किया, जिसके फल स्वरूप भूः, भुवः स्वः (गायत्री की तीन व्याहृतियों) की प्रतीति हुई। जब पुनः इन तीनों का ध्यान किया तो ओंकार की प्रतीति हुई। यह ओंकार ही ब्रह्म है। जैसे शंकु के द्वारा समस्त पर्ण (पत्ता) नसों से व्याप्त रहता है, वैसे ही ओंकार के द्वारा समस्त वाणी के व्याप्त रहने से यह सिद्ध है कि ओंकार परमात्मा से भिन्न नहीं है। अर्थात् वही एकमात्र परमात्मा है और वही सब कुछ है। यह सभी ओंकार है।"

मुण्डकोपनिषद् में परमात्मा की प्राप्ति में ओंकार के उच्चारण को ही अधिक महत्वपूर्ण कहा गया है, यथा—

अरा एव स्थनाभौ संयता यत्र नाड्यः
स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः।
ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं
स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात्॥

"जैसे रथ-चक्र (पहिये) की नाभि में अरे लगे होते हैं, वैसे ही शरीर की नाड़ियाँ हृदय से लगी हुई हैं। अनेक प्रकार से आविर्भूत होने वाला परमात्मा हृदय में ही निवास करता है। इस आत्मा रूप परमात्मा का ओंकार रूप में ही ध्यान करना चाहिये। क्योंकि अज्ञानान्धकार से और संसार-सागर से पार होने में यही कल्याणकारी है।"

## त्रिकालमय और त्रिकालातीत ब्रह्म—

माण्डूक्य-उपनिषद् में ओंकार को ही त्रिकालमय तथा त्रिकालातीत कहा गया है—

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं,
भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वमोंकार एव।
यच्चान्यत् त्रिकालातीत तदप्योंकार एव ॥

"यह ओंकार ही अविनाशी ब्रह्म है, यह समस्त दृश्य प्रपंच रूप विश्व उसी ओंकार ब्रह्म का उप-व्याख्यान रूप—उसी की महिमा रूप से व्यक्त है। भूत, वर्तमान और भविष्य संज्ञक जो तीन काल हैं, वे भी रूप ही हैं तथा इन तीनों कालों में परे भी जो कुछ है, वह सब ओंकार ही है।"

विश्व प्रपंच को गति कौन देता है ? काल अर्थात् समय। काल का चक्र कभी रुकता नहीं अनवरत चलता रहता है। किन्तु इस चक्र में एक बड़ी भारी विशेषता है अन्य चक्रों की अपेक्षा। अन्य चक्रों के अरे घूम-घूमकर उन्हीं स्थानों पर लौटते रहते हैं, जबकि कालचक्र के अरे लौट नहीं पाते। उसमें जो वर्तमान है, वह अतीत बनता रहता है, जो भविष्य है वह भी वर्तमान बनकर, बाद में अतीत बन जाता है और अतीत तो अतीत है ही, वह चला गया तो फिर लौटने का नाम भी नहीं लेता। इसीलिये आवश्यकता इस बात की है कि वर्तमान को अतीत न बनने दिया जाय। हो सकता है कि भविष्य अच्छा न हो, जब भविष्य अच्छा न होगा तो जब किसी दिन वह वर्तमान बनेगा तो अपनी चपेट में लिये बिना छोड़ेगा नहीं। अपने बुरे फल से प्रभावित अवश्य करेगा, फिर चाहे वह भी शीघ्र ही अतीत क्यों न बन जाय। खोटा समय जाता तो है, किन्तु जाते-जाते मनुष्य को दु:खी बना जाता है।

किन्तु खोटा समय क्यों आता है ? उसका कारण हो सकता है पाप-कर्म। प्रत्येक पाप-कर्म, प्रत्येक अधर्म मनुष्य के लिये अशुभ भोग रूप फल उत्पन्न करता है। आवश्यक नहीं कि वह फल तत्काल ही उत्पन्न होजाय। तत्काल भी हो सकता है, निकट भविष्य में भी, और अगले

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



जन्मों में भी। एक शास्त्रीय मान्यता के अनुसार छोटे-छोटे अल्पकालीन शुभ-अशुभ कर्म पहिले फलभोग की प्राप्ति बाद में होती है। इसके अतिरिक्त भोगों के पहिले-पीछे प्राप्त होने में न जानें कब-कब के संस्कार प्रकट होते रहते हैं।

समग्र दृष्टि से देखने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि पाप या अधर्म के फल स्वरूप अशुभ फल और पुण्य या धर्म के फल स्वरूप शुभ फल प्राप्त होते हैं। किन्तु फल चाहे शुभ हों या अशुभ भोगने तो होते ही हैं। जब तक उनका क्षय नहीं होता, तब तक मोक्ष-प्राप्ति सम्भव नहीं। इसीलिये ज्ञानीजन ओंकार रूप परब्रह्म की साधना का उपदेश देते हैं, जिसका तात्पर्य है कि अशुभ फल शेष हैं तो इनके जो कारण हैं पाप-कर्म, उनका क्षय होजाता है ओंकार-साधना से। यदि शुभ कर्म हैं तो उनका समर्पण करदो परमात्मा को। समर्पण करने से उनका भोग भी समाप्त होजायगा और तब मोक्ष की स्थिति स्वतः प्राप्त हो जायगी।

मैत्रायण्युपनिषद् ने ब्रह्म के मूर्त्त और अमूर्त्त दो रूपों का प्रतिपादन करते हुए कहा है—'यन्मूर्त्तं तदसत्यं यदमूर्तं तत्सत्यं तद्ब्रह्म यद्ब्रह्म तज्ज्योतिः यज्ज्योतिः स आदित्य सवा एष ओमित्येतदात्मा' अर्थात् 'जो मूर्त्त रूप है वह असत्य है, जो अमूर्त्त रूप है, वह सत्य है, वही ब्रह्म है और जो ब्रह्म है, वही ज्योति है, जो ज्योति है वह आदित्य है, वही ओम है, वही आत्मा है।'

उसके बाद इसी उपनिषद् में कहा है कि उसी आत्मा ने अपने स्वरूप को तीन प्रकार का कर लिया है, वे प्रकार हैं तीन मात्रा के रूप में। उन्हीं तीन मात्राओं में सब कुछ ओत-प्रोत है, सभी कुछ इन तीन मात्राओं में ही विद्यमान है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



योगचूडामण्युपनिषद् में भी इस प्रकार कहा गया है कि अकार, उकार और मकार यह तीन वर्ण वाले तीन वेदों से सम्पन्न है। इसी में तीन लोक, तीन गुण, तीन अक्षर प्रणव से ही प्रकाशित हैं। इसके तीन अक्षरों की स्थिति तीन अंगों में व्याप्त कही है। यथा—

अकारो जाग्रति नेत्रे वर्तते सर्वजन्तुषु।
उकारः कण्ठतः स्वप्ने मकारो हृदि सुप्तितः॥

"अकार जाग्रत्-अवस्था वाला तथा नेत्रों में निवास करने वाला है। उकार स्वप्नावस्था वाला और कण्ठ में रहता है, मकार सुषुप्ति अवस्था वाला एवं हृदय में विद्यमान है।"

इससे आगे कहा है कि अकार स्थूल, विराट् तथा विश्व है, उकार सूक्ष्म, हिरण्यगर्भ और तैजस है। मकार कारण, अव्याकृत और प्राज्ञ है। अकार राजस, रक्तवर्ण और ब्रह्मा, उकार सात्विक शुक्ल वर्ण और विष्णु तथा मकार तामसिक कृष्ण वर्ण और रुद्र है।

## ओंकार से त्रिदेवों की उत्पत्ति—

इससे भी यह मान्यता स्पष्ट होती है कि प्रणव से ही ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई, प्रणव से ही विष्णु की उत्पत्ति हुई तथा प्रणव से ही शिवजी हुए। प्रणव ही परात्पर ब्रह्म है। जब संसार का लय होता है तब ब्रह्मा अकार में, विष्णु उकार में और रुद्र मकार में लीन हो जाते हैं। उस समय एकमात्र प्रणव ही प्रकाशित रहता है, यथा—

अकारे लीयते ब्रह्मा उकारे लीयते हरिः।
मकारे लीयते रुद्रः प्रणवो हि प्रकाशते॥

परमात्मा की तीन शक्तियाँ प्रसिद्ध हैं—इच्छा, क्रिया और ज्ञान-शक्ति के नाम से। यह सब प्रणव से ही उद्भूत हैं, उसी की शक्तियाँ हैं। योगचूडामणि-उपनिषद् का ही कथन है—

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra


इच्छा क्रिया तथा ज्ञानं ब्राह्मी रौद्रो च वैष्णवी।
त्रिधा मात्रा स्थितिर्यत्र तत्परं ज्योतिरोमिति॥

"इच्छा, क्रिया और ज्ञान—यह तीनों शक्तियाँ तथा ब्राह्मी रौद्री और वैष्णवी—यह तीनों मात्राएँ परं ज्योति स्वरूप ओंकार में स्थित हैं।" इस प्रकार से प्रतिपादन करता हुआ उपनिषत्कार उसके जप और फल का निर्देश करता है—

वचसा तज्जपेन्नित्यं वपुषा वत्समभ्यसेत्।
मनसा तज्जपेन्नित्यं तत्परं ज्योतिरोमिति॥
शुचिर्वाऽप्यशुचिर्वापि यो जपेत्प्रणवं सदा।
न स लिप्यति पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥

"उसी ओंकार को वाणी से सदैव जपना चाहिये, शरीर से उसका सदा अभ्यास करना चाहिये। मन से सदा उसका जप करे क्योंकि परम ज्योति स्वरूप परमात्मा वही है। चाहे शुद्ध अवस्था में हो चाहे अशुद्ध अवस्था में, जो सदा प्रणव का जप करता रहता है, वह, जैसे कमल का पत्र पानी से लिप्त नहीं होता, वैसे ही पाप से कभी लिप्त नहीं होता।"

ब्रह्मबिन्दूपनिषद् में भी प्रणव-साधना को अत्यन्त महिमामयी मानते हुए कहा गया है—

स्वरेण सन्धयेद्योगमस्वरं भावयेत्परम्।
अस्वरेण हि भावेन भावो नाभाव इष्यते॥

"साधक का कर्त्तव्य है कि वह प्रणव रूप स्वर-योग के द्वारा परमात्मा से एकता स्थापित करे—उसी के द्वारा परम तत्व का भावपूर्ण चिन्तन करे। क्योंकि प्रणव-भाव के द्वारा भाव रूप ब्रह्म की प्राप्ति सम्भव है। प्रणव-भाव के बिना असम्भव ही है।"

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



समस्त सिद्धियाँ भावना पर निर्भर हैं। भावना के द्वारा ही मन्दिरों में स्थापित की जाने वाली प्रतिमाओं में प्राण प्रतिष्ठापित करके उनकी महिमा बढ़ा दी जाती है और प्रतीकों को ही भगवान् जैसी मान्यता दी जाती है। इस प्रकार पाषाण भी भगवान् बन जाते हैं और भावना न हो तो सभी कुछ पत्थर रह जाता है। भावना से ही कठौती में भरा पानी गंगाजल बन जाता है। इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए ही ज्ञानी-जन भावना-परक उपासना पर अधिक जोर देते हैं। कुछ लोग मन्दिरों में जाते हैं, दर्शन भी करते हैं, किन्तु मन मूर्त्ति की ओर नहीं होता, वह कहीं अन्यत्र सैर-सपाटा करता होता है। इसलिये ऐसे दर्शन से कोई लाभ नहीं। उस जप से भी कुछ फल नहीं निकलता, जिसके साथ मन का योग न हो।

मन और भावना का परस्पर अभिन्न सम्बन्ध है। जहाँ मन होगा वहीं भावना रहती है। भावना रहने पर किसी भी वस्तु के विद्यमान न रहने पर भीं उसका रूप आँखों में नाचता रहता है। भावना नहीं होती तो आँखों के सामने चाहे कुछ भी घटित होता रहे, कुछ भी दिखाई नहीं देता—यह भान ही नहीं होता कि हमारे आगे ही क्या घटित हो रहा है। इसलिये महत्व मन और उसकी भावना का है, घटना का नहीं है।

## अमात्र से परमपद की प्राप्ति—

नारायणोपनिषद् में प्रणव को सम मात्रा वाला माना है। मात्राएँ तीन हैं, किन्तु तीनों ही समान शक्ति वाली, भेद-भाव कुछ नहीं—

प्रत्यगानन्दं ब्रह्मपुरुषं प्रणवस्वरूपं अकारः उकारो मकार इति। ता अनेक द्या समभवत्तदेतदोमिति यमुक्त्वा मुच्यते योगी जन्मसंसार बन्धनात्।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



"अकार, उकार और मकारयुक्त यह प्रत्यागानन्द (आत्मा) ब्रह्म पुरुष रूप तथा प्रणव स्वरूप है। यह अनेक प्रकार का होकर भी सम मात्रा रूप है, जिसे ओम् कहते हैं और इसके जप से योगीजन संसार के जन्म-मरण वाले बन्धन से छूट जाते हैं।"

अमृतनादोपनिषद् में उन मात्राओं के ही त्याग का उपदेश दिया है। उसका कथन है—

मात्रालिंग पदं त्यक्त्वा शब्द व्यंजन वर्जितम्।
अस्वरेण मकारेण पदं सूक्ष्मं हि गच्छति॥

"प्रणव की अकरादि सब मात्राओं और उसके लिंगभूत सभी पदों का त्याग करते हुए, स्वर और व्यंजन से भी वर्जित रखते हुए केवल स्वरहीन मकार के द्वारा साधक सूक्ष्मपद में जा पहुँचता है—उसे परम-पद की प्राप्ति हो जाती है।

ऐतरेय ब्राह्मण में त्रयीविद्या (तीन वेदों) के प्रकाश की बातें संबंधी उपनिषद्-मान्यता को कुछ प्रकारान्तर से कहा गया है कि तीन वेदों का प्रकाश ब्रह्म से हुआ। किन्तु उसके प्रकाशक विभिन्न ऋषि या देवता थे। अग्नि नामक ऋषि के द्वारा ऋग्वेद प्रकाश में आया, वायु नामक ऋषि के द्वारा यजुर्वेद तथा आदित्य नामक ऋषि अथवा देवता से सामवेद उत्पन्न हुआ। वस्तुतः प्राचीन ऋषि द्रष्टा हुआ करते थे। उनके अनुभव में जो कुछ आता था, वही सत्य माना जाता था। वेदों में द्रष्टा भी ऋषि ही हुए हैं। ऐतरेय ब्राह्मण का तो मानना ही ऐसा है। वेद-ज्ञान ही मनुष्यों को विवेक देने वाला हुआ। उसी ज्ञान से यह जाना सका कि विश्व में तीन लोक मुख्य हैं। क्योंकि ऋग्वेद के द्वारा भूलोक प्रकाश में आया, जिससे मनुष्यों के पार्थिव ज्ञान में वृद्धि हुई। यजुर्वेद के द्वारा अन्तरिक्ष का पता लगा, जिसके द्वारा अन्तरिक्ष और उससे सम्बन्धित तत्वों की जानकारी हुई। सामवेद से द्यु लोक या स्वर्ग के सम्बन्ध में

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



जानकारी मिली, जिससे अन्तरिक्ष में परे विद्यमान ज्योतिर्मय जगत् के सम्बन्ध में जानकारी हो सकी। तब यह भी पता चला—

तानि शुक्राण्यभ्यतपत्। तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयो वर्णा अजायन्त। अकारः उकारो मकारः इति, तानेकधा समभरत्। तदेतद् ओमिति।

"इन भूलोक, अन्तरिक्ष लोक और स्वर्गलोक—तीनों को एक मात्र उसी ब्रह्म ने प्रकाशित किया है और वह स्वयं भी इनमें निहित तीन वर्णों में व्याप्त है। वे तीन पद अकार, उकार और मकार ही हैं। उन तीन मूल प्रकर्षों के द्वारा ही यह ओंकार ब्रह्म अनेक रूपों में सपभरित हुआ है।" तथा—

तस्मादोमिति प्रणोति
ओमिति वै स्वर्गो लोकः।
ओमित्वसो योऽसौ तपति॥

"ओम् के द्वारा ही परब्रह्म को प्रणाम किया जाता है। ओम् के द्वारा ही स्वर्गलोक प्राप्त किया जा सकता है। यह ओम् ही ऐसा है जो समस्त विश्व को तपा रहा है।"

ताण्डव ब्राह्मण ने कहा है कि सम्पूर्ण स्थावर जंगम प्राणियों और पदार्थों का रस (सार) पृथिवी है। पृथिवी का रस जल और जल का रस ओषध (अन्न) है तथा अन्न का सार रूप यह मनुष्य-शरीर है। मनुष्य-शरीर का सार है वाणी, वाणी का सार ऋचा, ऋचा का सार साम तथा साम का सार उद्गीथ (ओंकार) है। ओंकार को उद्गीथ इसलिये कहा है कि यह 'उत्' अर्थात् ऊँचे स्वर से 'गीथ'—गाया जाता है। यथा—

ओमिति हि उदक्षरमुद्गीथमुपासीत्।
ओमित्युद्गायति तस्योपाख्यानम्॥

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



"ओम् ही अक्षर है, वही उद्गीथ (गाने योग्य) तथा उपासना के योग्य है। परमात्मा के उपाख्यान रूप ओंकार को प्राचीन ऋषिगण सदैव गाते रहे हैं।"

आगे कहा है—'ओम्-ओम्-ओम् पिवाम' और 'ओंकार एवेदं सर्वम्' इन वाक्यों का क्रमश: अर्थ है—'हम सब इस ओम्-ओम्-ओम् रूप सुधा-रस का पान करते हैं।" तथा 'यह जो कुछ भी है, सब ओंकार ही है।'

गोपथ ब्राह्मण में कहा है—'आत्म भैषज्यमात्मकैवल्यमोंकारः' आत्मा के अस्वास्थ्य को दूर करने के लिये यह कैवल्य रूप—मोक्ष रूप ओंकार ही अमोघ औषधि है।' इसलिये सदैव इस महौषधि का सेवन करना चाहिये।

## आत्म-भैषज्य ओंकार–

मानसिक विकारों का शमन तो ओंकार से होता ही है, शरीर पर भी उसका अद्भुत प्रभाव पड़ता है। क्योंकि शारीरिक स्वास्थ्य की निर्भरता मन पर भी है। यदि मन में सन्ताप भरा है तो शरीर भी कष्टों से बच नहीं सकता। एक कहावत है 'मन रोगी तो शरीर रोगी' वस्तुत: यह सब पुरानी कहावते भी बड़े अनुभवों के आधार पर बनी हैं। पुराने लोग चाहे पढ़े लिखे थे या नहीं थे. अनुभव को अधिक महत्व देते थे। उनका विश्वास था कि शिक्षा उपयोगी अवश्य होती है, किन्तु अनुभव उससे भी अधिक उपयोगी है। अनुभव के विना शिक्षा भी अधूरी रह जाती है। वर्तमान काल में भी शिक्षा के दो रूप प्रचचित हैं—मौखिक (थ्योरी), और प्रयोगात्मक (प्रैक्टिकल)। कम से कम विज्ञान के क्षेत्र में तो प्रयोगात्मक शिक्षा के विना कोई उपाधि नहीं दी जाती।

ajGuru Maṭh, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



तो 'मन रोगी तो शरीर रोगी' वाली बात प्रयोगात्मक कसौटी पर कसी हुई है। सैकड़ों वर्षों से मानव-पीढ़ियाँ अपने-अपने कनुभव की कसौटी पर कसती आई हैं उसे। और यह भी कभी किसी प्राचीन ऋषि का अनुभव ही रहा होगा, जिसने कहा था—'आत्म-भैषज्यमात्म कैवल्य-मोंकार:' आत्मा की—मन की दवा आत्मा को कैवल्य रूप स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिये ओंकार ही है, वही अमोघ औषधि है। भगवान् राम के बाण अमोघ थे वे कभी खाली नहीं जाते थे, उन्हें तो निशाने पर पहुँच कर अपना काम करना ही होता था, इसलिये यह बात प्रचलित होगई कि अमुक वस्तु को अमुक रूप देने वाला जो साधन है वह राम-बाण है। लोग अमोघ को राम बाण कहने लगे। यदि यहाँ हम यह कहें कि आत्मा की व्याधि दूर करने के लिये ओंकार रूप महौषधि रामबाण है तो इसका अर्थ हुआ कि उसका उपाय ही एकमात्र यही है। यही ओंकार जो स्वयं आत्मा ही है, वह मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति कराने वाला तभी होता है जब मन को शुद्ध कर लेता है। जब मन के सभी मल-विक्षेप दूर होते हैं, तभी कहा जा सकता है कि वह शुद्ध है। इसी प्रकार शरीर को स्थायी रूप से शुद्ध करना होता है तो पहिले उसके मलों का शोधन ही अपेक्षित होता है। वर्तमान चिकित्सक उस ओर ध्यान न देकर ऊपरी तौर पर रोग को दबाने की दबाएँ दे देते हैं, जिससे रोग दूर नहीं होता, दब जाता है। उपासना पक्ष में भी जब मनुष्य विभिन्न देवी-देवताओं की उपासना करता है तो उसके द्वारा जो फल मिलता है वह स्थायी नहीं होता। स्थायी फल की प्राप्ति तो साक्षात् परब्रह्म की उपासना से ही हो सकती है। इसी तथ्य को स्पष्ट करने के लिये गोपथ ब्राह्मण में स्पष्ट कहा गया है कि 'आत्म भैषज्यमात्मकैवल्यमोंकार' यदि आप अपने जीवन में असन्तुष्ट हैं किसी भी कारणवश, तो ओंकार का जप, ध्यानादि करके देखिये—आपका असन्तोष अवश्य दूर हो जायगा।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran



क्योंकि ओंकार ही सबका कर्त्ता है, वही गुणात्मक और गुणातीत है, वही हंस रूप परमेश्वर है—

अक्षरं त्रिगुणाकारं सर्वाक्षरमयं शुभम्।
त्र्यर्णवं प्रणवं हंसं स्रष्टारं परमेश्वरम्॥

"ओंकार ही प्रणव है, वही हंस है, वह अक्षर अर्थात् नष्ट न होने वाला है, वही जब व्यक्त होता है तब तीनों गुणों से बनने वाले अकारों का रूप ले लेता है (किन्तु है तीनों गुणों से परे ही) वही समस्त अक्षरों से, समस्त ध्वनियों से ओतप्रोत रहने के कारण शुभ है। वही सृष्टि का रचयिता परमेश्वर है।"

हंस का तात्पर्य आत्मा से है। आत्मा के द्वारा ही शरीर में जीवन रहता है, प्राण उसी के द्वारा रहते हैं और श्वास-निःश्वास क्रिया का कारण भी वही है। क्योंकि यह स्पष्ट देखा जाता है कि जब आत्मा शरीर को छोड़ कर निकल जाता है, तब शरीर में जीवन प्राण, स्पन्दन, श्वास-निश्वास कुछ नहीं रहता। आत्मा रहता है तो निरन्तर श्वास क्रिया चलती रहती है। प्रत्येक श्वास के साथ हंस ध्वनि निकलती रहती है 'हकारेण बहिर्याति सकारेण विशत् पुनः' यह श्वास हकार के साथ बाहर जाता और सकार के साथ भीतर लौटता है, इस प्रकार जब ह और स की निरन्तर ध्वनि चलती है तब वह हंस रूप हो जाती है' और वही हंस रूप ध्वनि सोऽहं रूप भी प्रतीत होती है। 'स+अहं वह मैं हूँ। वह मैं आत्मा हूँ। और जब मनुष्य को 'सोऽहं' का ज्ञान हो जाता है तब उसके लिये यह ज्ञान भी तुरन्त हो जाता है—'य सोऽहं स ब्रह्म' जो सोऽहं है वही ब्रह्म है और तब वह 'अहं ब्रह्मास्मि' कहने का—'मैं ब्रह्म हूँ' यह कहने का अधिकारी होजाती है। उसी स्थिति में उसे ज्ञान होता है कि वह जो हंस' शब्द व्यक्त हो रहा है भीतर से वह मुझसे भिन्न नहीं है, वह मैं ही हूँ! मैं ही हूँ वह आत्मा जो हंस नाम से प्रसिद्ध

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



है और जब मैं हंस नाम से प्रसिद्ध आत्मा हूँ तो ओंकार नाम से प्रसिद्ध परमात्मा भी हूँ । शास्त्र वचन है—

प्रणवं ईश्वरं विद्यात् सर्वस्य हृदि संस्थितम् ।
सर्वं व्यापिनमोंकारं मत्वा धीरो न शोचति ।।

"समस्त प्राणियों के हृदयों में विद्यमान प्रणव रूप ईश्वर ही जानने योग्य है । उसे सर्वं व्यापी ओंकार मानने वाले धीर पुरुष कभी शोच नहीं करते ।"

वस्तुतः ओंकार परमात्मा का एक ऐसा नाम है, जिसकी सिद्धि किसी अन्य नाम से उतनी नहीं होती । अपनी महिमा के कारण यह नाम स्वयं सिद्ध है । योगीजन उसी की महिमा को जानते हुए आत्म-साक्षात्कार तो करते ही हैं, आत्मा-परमात्मा का अभेद भी अनुभव करते हैं ।

संसार में जो नाद व्याप्त है वह ओंकार का ही नाद है । समस्त वायुमण्डल में वही गूंज रहा है । आचार्य शंकर इसीलिये नादानुसन्धान को बड़ा महत्व देते रहे । उनका कहना था—

सर्वं चिन्ता परित्यज्य सावधानेन चेतसा ।
नाद एवानुसन्धेयो योगसाम्राज्यमिच्छता ।।

"यदि योग रूपी साम्राज्य की इच्छा हो तो छोड़ दो सभी प्रकार की चिन्ता को और चित्त को स्थिर करके सावधान हो जाओ । इस प्रकार नाद का अनुसन्धान करो ।"

वही नाद ओंकार-नाद है, प्रणव-नाद है । उसकी उपासना चाहे सूक्ष्म रूप से करो, चाहे स्थूल रूप से । सूक्ष्म रूप से करने पर मोक्ष मिलता है और स्थूल रूप से करने पर भौतिक कामनाओं की पूर्ति होती है । जैसे भी हो सके आश्रय ले लो ओंकार का । प्रश्नोपनिषद् में कहा है—

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



तमोंकारणेववायतननेनान्वेति विद्वान् ।
यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परंचेति ॥

"उस ओंकार का जो बुद्धिमान पुरुष आश्रय ले लेता है, उसे उस शान्त स्वरूप, अजर, अमर, भय-रहित परमात्मपद की प्राप्ति शीघ्र हो जाती है।"

विश्व में जितने भी नाम रूप हैं, वे सब परमात्मा के ही हैं। उस सबका प्रसार ओंकार के द्वारा ही हुआ है। परमात्मा के नाम सभी रहस्यों का उद्घाटन कर उन्हें व्यावहारिक बनाते और परमात्मा के साक्षात्कार में सहायक होते हैं। ओंकार उन सभी नामों का एकमात्र मूल आधार है।

---

# ओंकार के पच्चीस अर्थ

## ओंकार की व्युत्पत्ति–

'ओम्' शब्द 'आप्लृ' व्याप्तौ और 'अव' रक्षणे धातु से सिद्ध होता है। 'आप्लृ धातु से निर्मित हुए ओम् का अर्थ ही सर्वव्यापी है। जब इसका निर्माण 'अव्' धातु से होता है, तब इसका अर्थ होता है रक्षा करने वाला। संसार-सागर से रक्षा करने वाला 'ओम्' अवधातु से निर्मित है। अव' धातु के अनेकों अर्थ बनते हैं, जिनमें मुख्य अर्थ रक्षा करना ही है। एक अर्थ लय करने वाला भी है।

ओंकार संसार-सागर से तथा अन्यान्य भयों से रक्षा करने वाला है, इसलिये भगवान् पाणिनि ने 'ओम्' शब्द की सिद्धि 'अव' धातु से

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



ही मानी है। 'अव' धातु से मन् प्रत्यय होता है। 'अवतेष्टिलोप:' इस उणादि के सूत्र से 'टि' का लोप हो जाता है। अव+म्' ऐसी अवस्था में ज्वस्वर० इत्यादि कृदन्त व सूत्र से 'व' का उढ होता है, तब 'अ+उ+म्' ऐसी अवस्था बन जाती है। तदनन्तर 'आद्गुण:' सूत्र से गुण होने पर 'ओम् की सिद्धि होती है।

## 'अ' अक्षर का अर्थ–

इसे विस्तार से समझने के लिये ओंकार में विद्यमान अ, उ, म अक्षरों के विषय में भी विचार कर लेना उचित होगा। 'अ' अक्षर की व्युत्पत्ति 'अव्' धातु में 'ड' प्रत्यय लगाने से होती है। यह अक्षर संस्कृत और देवनागरी वर्णमाला का प्रथम तथा स्वर-वर्ण के अन्तर्गत है। इसका उच्चारण कण्ठ से होता है। इसी अकेले अक्षर के अठारह भेद हैं। प्रथम—ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत। तदनन्तर—ह्रस्व-उदात्त, ह्रस्व-अनुदात्त और ह्रस्व-स्वरित—यह तीन, फिर दीर्घ-उदात्त, दीर्घ-अनुदात्त और दीर्घ-स्वरित—यह तीन, तथा प्लुत-उदात्त, प्लुत-अनुदात्त और प्लुत-स्वरित—यह तीन, इस प्रकार नौ हुए। अब अनुनासिक भेद से नौ के दूने होकर अठारह हो जाते हैं। अव्यय रूप में 'अ' अक्षर निषेधार्थक 'नञ्' का प्रतिनिधि होता है। जब यह स्वर से आरम्भ होने वाले शब्दों से पहिले आता है, तब इसका रूप अन् होता है और व्यञ्जन से पहिले आता है तो 'अ' ही रहता है। 'नञ् के छ: अर्थ माने जाते हैं—(१) तत्सादृश्यं समानता), (२) अभावश्च (अभाव), (३) तदन्यत्वं (भिन्नता), (४) तदल्पता (न्यूनता), (५) अप्राशस्त्यं (अप्रशस्तता), और (६) विरोधश्च (विरोध, अनादर आदि)

इस प्रकार ओंकार का प्रथम अक्षर ही महान् एव व्यापक है। यह ब्रह्मा, विष्णु, शिव, वायु, वैश्वानर, विश्व, अमृत आदि शब्दों और उनसे बनने वाले वाक्य-समूहों को व्यक्त करने में भी साधन रूप होता

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran



है। इसलिए अकार की ही महिमा किसी प्रकार कम नहीं है। वस्तुतः धातु पाठ में 'अव' धातु के जितने अर्थ हैं, उतने किसी अन्य धातु के नहीं हैं।

## 'उ' अक्षर का अर्थ–

इस अक्षर की व्युत्पत्ति 'अत्' धातु में 'डु' प्रत्यय्य लगाने से होती है। यह देवनागरी वर्णमाला का पाँचवां स्वर-वर्ण है। इसका उच्चारण ओष्ठ की सहायता से होता है। अकार के समान इसके भी ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, सानुनासिक और निरंनुनासिक के भेद से अठारह प्रकार के हैं। 'उ' को गुण करने से 'ओ' और वृद्धि करने से 'औ' रूप होता है। इस अक्षर के अर्थ भी व्यापक हैं, किन्तु सामान्यतः इसके अर्थ शिव, ब्रह्मा, चन्द्र-बिम्ब आदि होते हैं। अव्यय रूप में इसके अर्थ होते हैं—अनुग्रह, आदेश, स्वीकृति, क्रोध, सम्बोधन, पुकारना आदि, जिसमें प्रश्न व्यंजक अव्ययात्मक सम्बोधन भी सम्मिलित है।

'उ' को गुण करने पर जो 'ओ' बनता है, वह देवनागरी वर्णमाला का ग्यारहवाँ स्वर-वर्ण है। इसका उच्चारण कण्ठ और ओष्ठ से होता है। इसके भी उदात्त, अनुदात्त, स्वरित और सानुनासिक भेद माने जाते हैं। पुल्लिग रूप में 'ओ' की व्युत्पत्ति 'उ' धातु में 'विच' प्रत्यय लगाने से होती है, जिसका अर्थ निकलता है परब्रह्म परमात्मा।

## 'म' अक्षर का अर्थ–

इस अक्षर का नपुंसक लिंगी स्वरूप 'मा' धातु में 'क' प्रत्यय लगाने पर व्युत्पन्न होता है, जिसके अर्थ बनते हैं, जल, सुख, कुशल-क्षेम इत्यादि। किन्तु पुल्लिगी स्वरूप होने पर ब्रह्म, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, चन्द्रमा, यम, काल, समय, विष आदि इसके अर्थ बनते हैं। इसका उच्चारण ओष्ठ और नासिका के सहयोग से होता है, जिसमें संवार, नादघोष और अल्प प्राण प्रयत्न लगाने होते हैं। वस्तुतः जिह्वा के अग्र-

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



भाग का दोनों ओष्ठों से स्पर्श होने पर ही इसका उच्चारण हो पाता है। यह वर्ण स्पर्श और अनुनासिक है।

इस प्रकार 'अ उ, म के योग से निर्मित 'ओइम्' के अनन्त अर्थ हो सकते हैं। यदि मुख्य अर्थ भी लिखने बैठें तो अनेकों हो सकते हैं, जिन सब का लिखा जाना यहाँ सम्भव नहीं है। अतएव हम यहाँ केवल २५ अर्थों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

## अर्थ और उनकी व्याख्या–

जो इक्कीस अर्थ यहाँ विचारणीय हैं, वे अव्यय रूप में 'अव' लगाने से आरम्भ होते हैं, जैसे अव+रक्षण, अव+दान, अव+धान आदि। वे अर्थ हैं—(१) रक्षण, (२) दान, (३) धान, (४) गति, (५) कान्ति, (६) दीप्ति, (७) गुण्ठन, (८) गूहन, (९) प्रीति, (१०) तृप्ति, (११) प्रवेश, (१२) इच्छा, (१३) क्रिया, (१४) बोध, (१५) भोग, (१६) धारण, (१७) वृद्धि, (१८) रति, (१९) याचन, (२०) व्याप्ति, (२१) वाप्ति, (२२) तारण, (२३) श्रवण, (२४) हिंसा, और (२५) स्वाम्यर्थ। इन पच्चीस अर्थों की व्याख्या इस प्रकार है—

## (१) रक्षण–

अव–रक्षणे के अनुसार 'संसार-सागरात् रक्षतीति' कहने से यह अर्थ बनेगा कि ओंकार संसार रूपी महासागर में डूबते हुए जीवों की रक्षा करने वाला है। वस्तुतः संसार महासमुद्र के समान ही दुरूह है, जो इसमें गिर जाता है, वह तरङ्गों के साथ थपेड़े खाता हुआ फिरता है। संसार-सागर की उत्ताल तरङ्ग रूप अहंकार के साथ इधर–उधर ठोकरें खाने वाला जीवात्मा वैसे ही दुखी रहता है, उसका दुःख उस समय और भी अधिक सताता है, जब काम, क्रोध, लोभ, मोहरूपी, भयंकर महामत्स्य उसके पीछे लग जाते हैं और फिर उनके चंगुल से छुटकारे का कोई उपाय दिखाई नहीं देता। ऐसी स्थिति में वह जो कर्म

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran



करता है, वे उसके लिये फल-भोग का संचय करते रहते हैं और संस्कार रूप से जन्म-जन्म के साथी बन जाते हैं। वे कर्म ही उसके लिये घोर संकट के कारण बन जाते हैं, जिनके प्रभाव से जीव कभी डुबकी लगाता है तो कभी ऊपर तैरने लगता है। किन्तु पार पहुँचने का कोई उपाय दिखाई नहीं देता। उस समय वह इतना व्यथित होता है कि परमात्मा की याद भी नहीं आती, और जब परमात्मा की याद न आये, तब तो दुःख ही दुःख है। परमात्मा की विस्मृति ही जीव को गहन सागर में डुबाने लगती है। ऐसे में भी यदि किसी की याद लौट आये, यदि किसी के ध्यान में आ जाय कि कोई रक्षा करने वाला भी है हमारा तो उसका जीवन बदल जाता है। यदि उस संकट की घड़ी में कोई प्राणी याद करता है ओंकार ब्रह्म की तो अवश्य ही उसकी रक्षा करता है। अव-रक्षण का यही अर्थ है—अरक्षित की रक्षा करना, ओंकार ब्रह्म संसार-सागर से रक्षा करता है।

## (२) दान -

'अवति-ददातीति' के अनुसार ओंकार ब्रह्म दानशील है। उसके समान कोई अन्य दानशील हो ही नहीं सकता। संसार में जहाँ, जो कुछ भी भोग्य दिखाई देता है, वह सब उसका दान ही है। वह प्रत्येक शरीरधारी की अनिवार्य आवश्यकता अवश्य पूरी करता है, इसीलिए पुराने लोग कहा करते हैं कि 'जिसने जन्म दिया वह चुंगा भी देगा।' चुगा अर्थात् भोजन, व्यवस्था उसने सभी की की हुई है, किन्तु असन्तोषी व्यक्ति उस व्यवस्था को पर्याप्त नहीं मानते इसलिये दुःख उठाते हैं। यदि शंका करें कि कभी-कभी लोगों को भूखे मरते हुए भी देखते हैं। इसका समाधान यह है कि सभी प्राणियों को भोग्य सामग्री की प्राप्ति भी उनके अपने-अपने कर्मों के अनुसार होती है। यदि कोई कर्म ऐसा उदय हो जाता है कि भूखों मारने वाला ही हो तो उसमें कोई क्या कहे ? फिर भी ओंकार ब्रह्म की उपासना से उस प्रकार के संकट का

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



भी निवारण हो सकता है। इसीलिए यहां 'अवति ददातीत' कहना अनुपयुक्त नहीं है, क्योंकि ओंकार ब्रह्म की दानशीलता का कथन अतिशयोक्ति रूप कभी नहीं हो सकता।

## (३) धान—

अव-धान का अर्थ है ध्यान एवं मनोयोग। किसी भी विषय में मन की एकाग्रता होना अवधान कहलाती है। सावधान या सतर्क रहना भी अवधान का ही एक रूप है। इस स्थिति को चित्त की समाहित अवस्था कह सकते हैं। यह अवस्था कैसे प्राप्त हो सकती है? इस प्रश्न का उत्तर मिलता है मुण्डकोपनिषद् से इस निर्देश से—'ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं' आत्मा में ही ओंकार का ध्यान करे। ओंकार के ध्यान से मन पूर्ण रूप से वश में हो जाता है। इससे हमें यह सन्देश मिलता है कि ओंकार ब्रह्म का ध्यान करने के लिये भी हमें उसी की सहायता लेनी चाहिए। हम उसका स्मरण करेंगे, उसके नाम का जप करेंगे तो हमारा मन स्वत: एकाग्र होने लगेगा। किन्तु यह भी होगा परमात्मा की कृपा से ही। हम समझें कि ध्यान तो हम कर रहे हैं, जप भी हम ही करते हैं, इसलिये एकाग्रता होगी तो हमारे ही प्रयत्न से होगी। किन्तु बात ऐसी नहीं है, जब परमात्मा की कृपा होती है तभी उसके स्मरण में चित्त लगता है। जब तक उसकी कृपा नहीं हो पाती, तब तक मनुष्य अपने कल्याण-साधन की बात सोचने से भी वंचित रहता है।

## (४) गति—

'अवगति' शब्द का अर्थ ज्ञान, बोध भी है और बुरी गति भी है। जो ज्ञान निश्चयात्मक हो, वह भी अवगति कहा जा सकता है। गति का अर्थ गमन करना, जाना आदि भी है। जिसको अवगति का अभिप्राय होगा—झुकना, पतन होना आदि। जब हम इसे गति के अर्थ में लेने हैं तो उत्कर्ष और अपकर्ष दोनों स्थितियों पर विचार करते हैं। हमारी

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grar



सब प्रकार की गतियों का कारण एकमात्र परमात्मा ही है, क्योंकि वह सर्वगत है और सर्वगत होने के कारण सर्व व्याप्त है। इसीलिये वह प्राणियों को बुरी गति के बचाने वाला या निकालने वाला भी होता है।

गति रूप में लेने के अर्थ में उसका परम गति रूप होना भी सिद्ध होता है और जब ऐसा सिद्ध होता है तो हम कह सकते हैं कि वह पूर्ण प्रकम्पन रूप है—एब्सोल्यूट वाइब्रेशन रूप। विश्व में जितने भी प्रकार के स्पन्दन हैं, वे सभी परमात्मा के—ओंकार के स्पन्दन हैं। जितनी भी गतियाँ हैं—सब ओंकार की ही गतियाँ हैं।

जब इस शब्द को बोधरूप में, ज्ञान रूप में लेते हैं, तब उसका अर्थ होता है कि ओंकार ब्रह्म सर्वगत, सर्वत्र होने के कारण सर्वज्ञ भी हैं—सभी कुछ जानने वाला है। ऐसा कहीं कुछ नहीं जो उससे छिपा हुआ हो। क्योंकि उससे छिपा हुआ कहीं कुछ रह भी नहीं सकता। फिर रहे भी कैसे? सभी में तो वह समाया हुआ है सभी कुछ उसी एकमात्र ओंकार ब्रह्म का रूप है।

ओंकार ब्रह्म ज्ञान रूप है, बोध रूप है, सभी विद्याओं का आश्रय स्थान है। सभी विद्याएँ, सभी शक्तियाँ उसी से निकलतीं हैं और लौट कर उसी में विश्राम पाती हैं। इस प्रकार ओंकार ही त्रयी विद्या (वेद विद्या) का जनक है, ओंकार ही विज्ञान को उत्पन्न करने वाला है। क्योंकि विज्ञान की उत्पत्ति स्वतन्त्र रूप से कभी नहीं हो सकती। ज्ञान ही विज्ञान के प्राकट्य का कारण है।

गति चेतना है, बोध भी चेतना है, यह दोनों ही एक रूप होकर जीवन बन जाते हैं। जब गति नहीं रहती, तब जीवन नहीं रहता। बोध नहीं रहता, तब भी जीवन का अभाव हो जाता है। यदि बोध के बिना जीवन रहे भी तो वह व्यर्थ है। किसी बुद्धिहीन को, किसी अविवेकी को, किसी अज्ञानी को देखिये—वह अपने जीवन में सफलता प्राप्त

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



नहीं कर पाता, और जो जीवन असफल हो वह व्यर्थ ही जाता है। इसलिये ओंकार ब्रह्म की साधना करनी चाहिये जिससे कि विवेक बुद्धि और बोध की जाग्रति हो सके। जाग्रत् जीवन ही ओंकारमय जीवन है, यही ओंकार के साथ अवगति लगने का सही अर्थ होगा, यही ओंकार का यथार्थ दर्शन समझना चाहिए।

## (५) कान्ति—

अव-कान्ति शब्द से ओंकार ब्रह्म की शोभा-सम्पन्नता पर प्रकाश पड़ता है। कान्ति के अर्थ हैं मनोहरता, आभा, सौन्दर्य आदि। जो परम सुन्दर हो वह अवकान्तिमान है, उसके सौंदर्य में निश्चयात्मकता है। रूप, दृश्य, ज्ञान, भाव, प्राकृतिक सौन्दर्य आदि की दृष्टि से भी ओंकार ब्रह्म ही अत्यधिक कान्तिमान है। पक्षियों के कलख में, सरिता के कल-कल में, वृक्षों के पुष्पित एवं फलित होने में अर्थात् सर्वत्र ही उस एकमात्र ओंकार ब्रह्म की सुन्दरता फैली हुई है।

इसका तात्पर्य यह है कि ओंकार ही परम सुन्दर है, वही सबको सुन्दर बनाये हुए है। सुन्दरता में जहाँ भी कमी दिखाई दे, वहाँ हमें समझ लेना चाहिये कि कर्म-भोग की ही विपरीतता है।

किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि कर्म-भोग सदा ही हमारी सुन्दरता में बाधक बने रहेंगे। उस बाधा को ओंकार-साधना द्वारा दूर हटा सकते हैं। जो सर्व सुन्दर है और समस्त सुन्दरता का कारण वह चाहे तो असुन्दर को भी सुन्दर बना सकता है!

## (६) दीप्ति—

दीप्ति का अर्थ है चमक या आभा। अत्यन्त मनोहरता भी इसका अर्थ होता है। दीप्ति से पूर्व लगा हुआ 'अव' उपसर्ग निश्चयात्मक एवं संकल्प रूप है। शोधन, शुद्धता, निर्मलता के अर्थ में भी प्रयुक्त होता

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



है। यह विस्तार का भी संकेत करता है। यहाँ यह तथ्य भी समझ लेना चाहिए कि शोभा, कान्ति और दीप्ति—तीनों ही प्रायः एकार्थक प्रतीत होते हैं, किन्तु इनमें स्वल्प अन्तर तो है ही। शोभा तब होती है जब शरीर के अङ्ग अलंकारों से विभूषित हों तथा रूप, यौवन और लालित्य भी हो। मनुष्यों पर ही नहीं, वृक्षादि पर भी सुन्दर फल-फूल लदे हों तो वह वनश्री ही शोभा कहलाती है। जब वह शोभा अपने उत्साह पर हो, जब उसमें तरंगें हों और मुख-मण्डल तेज से दमक रहा हो, वह कान्ति है और जब वही कान्ति विस्तीर्ण हो जाय तो दीप्ति कहलाती है। यथा—

रूप यौवनं लालित्यं भोगाद्यं रंगभूषणम्।
शोभा प्रोक्ता सैव कान्तिर्मन्मथाप्यायिता द्युतिः॥
कान्तिरेवातिविस्तीर्णा दीप्तिरित्यभिधीयते॥

यह अन्तर है शोभा, कान्ति और दीप्ति में, किन्तु तीनों की एक कड़ी है—शोभा इस छोर पर, दीप्ति उस छोर पर और कान्ति बीच में और जब हम कान्ति की प्रखरता पर ध्यान देते हैं तो स्पष्ट होता है कि ओंकार ज्ञान-प्रकाश रूप होने के कारण अज्ञानान्धकार के नाश में समर्थ है। तभी ओंकार की ज्ञानात्मक शक्ति की ओर ध्यान जाता है, जिसके साथ लगा हुआ 'अव' उपसर्ग एक वाक्य का कारण होता है—'अवति दीप्यतीति ओम्' ओम् ही विश्व में दैदीप्यमान है अथवा यों भी कह सकते हैं कि ओम् ने ही दैदीप्यमान—प्रकाशमान बनाया हुआ है संसार को।

ओंकार की उपासना अज्ञान को दूर करती है, अन्धविश्वासों की समाप्ति के लिए विवेक जाग्रत् कर देती है, उसके प्रभाव से आत्मप्रज्ञा या ऋतम्भरा प्रज्ञा का विकास होता है। साधक में सूक्ष्म रहस्यों के समझने की शक्ति उत्पन्न होती है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



## (७) गुण्ठन–

अवगुण्ठन का अर्थ है ढकने या छिपाने का साधन, जिसे सामान्य भाषा में घूँघट कहते हैं। किन्तु ओंकार के विषय में जब हम कहें—'अवति अवगुण्ठातीति ओम्' अर्थात् 'ओंकार भले प्रकार से ढक लेता है तो इसका अर्थ होगा कि प्रलय काल के पश्चात् ओंकार ब्रह्म इस संसार को अपने में छिपा लेता है। वस्तुत: यह शब्द तुरीयावस्था की ओर ध्यान आकर्षित करता है, जिसमें सभी कुछ विलीन हो जाता है ओंकार में और तब एकमात्र ओंकार ही शेष रह जाता हैं।

किन्तु 'अवगुण्ठन' शब्द से कोई यही न मान ले कि यह तुरीयावस्था का ही बोधक है। जो संसार को अपने में लीन कर लेता है ओंकार ब्रह्म, वही सर्गारम्भ अथवा जाग्रतावस्था में उसे प्रकट भी कर देता है। अब अपना अवगुण्ठन हटा लेती है प्रकृति तो यह संसार व्यक्त हो जाता है। उस समय जब एक से बहुत होने की इच्छा करता है ओंकार तब प्रकृति उसके अभिप्राय को समझकर अवगुण्ठन हटा लेती है। इस प्रकार ओंकार ब्रह्म जाग्रतावस्था का भी कारण होता हैं और जब जाग्रत् का कारण होता है तब स्वप्न, सुषुप्ति और पुन: तुरीयावस्था का कारण भी वही होगा।

इस प्रकार ओंकार ही संसार की समस्त अवस्थाओं का कारण होता है। जो लोग ओंकार के इस अर्थ को ठीक से समझ लेते हैं, वे संसार-सागर से पार रूप मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं।

## (८) गूहन–

अव-गूहन का अर्थ बनता है छिपाव, दुराव या उसी का अर्थ रखने वाले अन्य शब्द। अवगूहन आलिगन की क्रिया का भी नाम है। इससे तात्पर्य है कि ओंकार अपने अनन्य भक्तों को अपने साथ लगाता है, अपने में आलिंगित कर लेता है। हम देखते हैं कि बालक को उसके

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



माता-पिता छाती से लगाकर प्यार करते हैं, वैसे ही ओंकार ब्रह्म भी संसार-सागर में होने वाले तीन ताप जन्य दुःखों से छुड़ाकर साधक को अपने हृदय से लगा लेता है।

जब भक्त परमात्मा को अनन्य भाव से पुकारता है तब वह भी उन पर कृपा करने लिए दौड़ता है। किन्तु उसकी कृपा प्राप्त होती है, भक्त की भक्ति के अनुरूप ही। गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तान्स्तथैव भजाम्यहम्' अर्थात् 'जो जिस प्रकार मेरा प्रतिपादन करते हैं—जिस प्रकार मेरी इच्छा करते हैं, मैं भी उसी प्रकार से उनका भजन करता हूँ।

## (९) प्रीति–

अब-प्रीति अर्थ पर विचार करते हुए हमें सर्व प्रथम 'प्रीति' शब्द का अर्थ जानना होगा। प्रीति के अनेक अर्थ हैं, यथा—हर्ष, आनन्द, अनुकम्पा, अनुग्रह, अनुराग, प्रेम, मैत्री आदि। जब हम अवप्रीति के अर्थ पर विचार करते हैं, तब प्रीति के सभी अर्थों में निश्चयात्मकता उत्पन्न हो जाती है।

जब हम इसे ओंकार-पक्ष में लेते हैं, तब इसका अर्थ होता है कि परमात्मा सदैव हर्षमय है, वह कभी रुष्ट या अप्रसन्न नहीं होता। वह आनन्द स्वरूप है, आनन्द उससे पृथक् नहीं होता कभी भी आनन्द रूप हम और आप भी हैं, किन्तु देहाध्यास ने हमारे आनन्दमय होने को छिपा लिया है। इसलिए हम सांसारिक सुख को आनन्द समझे रहते हैं, जब कि सांसारिक सुख तो दुःख रूप ही हैं। वे भ्रम के कारण प्रतीत होते हैं सुख रूप।

ओंकार ब्रह्म का स्वभाव है समस्त प्राणियों पर अनुकम्पा और अनुग्रह करना। उसका अनुग्रह न हो तो हमारा यह जीवन ही नहीं चल सकता। हमारे समस्त कार्य, सभी गति-विधियाँ, समस्त स्पन्दन एकमात्र उसी पर निर्भर हैं।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



उसका अनुराग, उसका स्नेह, उसका प्रेम सदा हमारे साथ हैं, क्योंकि वही हमारा परम पिता है, हम सभी प्राणीगण उसी ओंकार ब्रह्म के अंशभूत हैं। पिता अपनी सन्तान पर सदा ही स्नेह रखता है, उसके स्नेह में तब भी कमी नहीं आती, जब सन्तान उसकी परवाह नहीं करती या उसके अनुशासन को नहीं मानती।

सभी प्राणी उसके लिए सुहृद मित्र के समान भी हैं। जो परमात्मा को सबका सुहृद मित्र समझ लेता है, वह निश्चय ही प्राणीमात्र के प्रति अपने मैत्री-भाव को सुदृढ़ करने में सफल होता है। वस्तुत: सब प्राणियों में मैत्री भाव रखने से ओंकार ब्रह्म की पूर्ण अनुकम्पा प्राप्त हो सकती है।

## (१०) तृप्ति—

तृप्ति के अर्थ हैं—लालसा का पूर्ण होना, सन्तोष, अतृप्ति का अभाव हो जाना आदि। इसमें प्रसन्नता और आह्लाद का भी समावेश रहता है। तुष्टि-पुष्टि का कारण भी तृप्ति ही है। इसके पूर्व 'अव' लगने से इन अर्थों में निश्चयात्मकता का उदय हो जाता है।

ओंकार ब्रह्म स्वत: ही तृप्ति रूप है, उसके तृप्त होने से सभी प्राणी तृप्त रहते हैं। महाभारत में एक कथा है कि जब पाण्डव वनोवास में थे, तब अपने हजारों शिष्यों के सहित महर्षि दुर्वासा वहाँ आ गये और भोजन करने की बात कह कर स्नान करने चले गये। किन्तु साँधनहीन पाण्डवों के पास वह व्यवस्था कहाँ थी जो उन्हें भोजन कराते ? सभी लोग भोजन कर चुके थे, अक्षय पात्र धोकर रखा जा चुका था। द्रौपदी परेशान थी कि महर्षि और शिष्यों के लिये भोजन बनने की व्यवस्था कैसे हो ?

बड़ी भारी समस्या थी—द्रौपदी ने आर्त स्वर में भगवान् श्रीकृष्ण को पुकारा। भक्तवत्सल भगवान् आते ही बोले—'द्रौपदी ! मुझे भूख

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



लगी है कुछ खाने को दे।' द्रौपदी के होश उड़ गये—जिस समस्या के समाधानार्थ इन्हें पुकारा था, वही समस्या इन्होंने खड़ी कर दी। कृष्ण ने उसका अन्तर्भाव जानकर कहा—'जा वह धो-पोंछ कर रखा अक्षय पात्र ही उठा ला।' द्रौपदी उठा लाई उसे, कृष्ण ने उसके भीतर हाथ डाला तो चावल का एक कण मिल गया। उन्होंने उसी को खाकर कहा—'द्रौपदी! मैं तृप्त हो गया और मैं तृप्त हो गया तो समस्त प्राणी तृप्त हो गये अब दुर्वासा और उनके शिष्यों को भी भूख नहीं रही। तू चाहे तो उन्हें भोजन तैयार होने की सूचना भेज दे।'

आदेशानुसार भीमसेन वहाँ गये तो दुर्वासा और उनके शिष्यों ने बड़े लज्जा-भाव से कहा—'वृकोदर! आप लोगों को व्यर्थ ही कष्ट दिया गया। हममें से किसी को भी भूख नहीं है, सभी पूर्ण तृप्ति का अनुभव कर रहे हैं।' भीमसेन ने आकर समाचार दिया तो द्रौपदी ने और पाण्डवों ने चैन की श्वास ली।

श्रीकृष्ण ने कहा था कि 'मेरे तृप्त होने में ही संसार भर के प्राणी तृप्त होते हैं।' उन्होंने गीता में कहा था कि 'ओंकार मैं हूँ' इसका अर्थ स्पष्ट है कि ओंकार ब्रह्म ही समस्त जीवों की तृप्ति का, प्रसन्नता का, आह्लाद का कारण है। कृष्ण और ओंकार में अभेद की सिद्धि गीता के उक्त उपदेश से स्वतः सिद्ध हो जाती है।

## (११) प्रवेश—

प्रवेश के अर्थ हैं—भीतर घुसना, भीतर जाना, भीतर पहुँचना, द्वार, किसी कार्य का आरम्भ आदि। सूर्य का किसी राशि में संक्रमण भी प्रवेश कहलाता है। प्रवेश से पूर्व उपसर्ग रूप में लगा हुआ 'अव' उसके उत्कर्ष और अपकर्ष दोनों का सूचक है।

समस्त प्राणि-शरीरों में, जीवमात्र में ओंकार ब्रह्म ही सूक्ष्म आत्मा-रूप से प्रविष्ट है, इसलिये यह सूत्र बनता है—'अवति सूक्ष्मत्वाप्रविश-

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



तीति ओंकारः' ओंकार ब्रह्म अत्यन्त सूक्ष्म रूप से सभी में प्रविष्ट रहता है, सभी में समाया हुआ है। अतएव आत्मा रूप से सहज ध्यान में आ सकता है।

जब कोई साधक ओंकार का ध्यान करता है तब उसके सात्विक गुण का समावेश उसके अणु-अणु में, कोश-कोश में स्वतः ही होने लगता है। यही कारण है कि ओंकार-साधना काम का निवारण करती है, क्रोध को विलीन कर देती है, लोभ और मोह भी धीरे-धीरे नष्ट होने लगते हैं।

और जब ऐसा होने लगता है तब उसे अनुभव होता है शान्ति का, प्रेम का, आनन्द का, जिससे उसके जीवन में ईश्वरीय ऊर्जा का अवतरण हो जाता है, उसके स्वभाव में बहुत बडा परिवर्तन होना स्पष्ट प्रतीत होता है। दिव्यता के आविर्भाव के कारण अज्ञानान्धकार तो पूर्ण रूप से दूर हो चुका होता है।

इस प्रकार जब साधक में ओंकार-प्रदत्त गुणों का समाविष्ट हो जाता है, तब उसका अहंकार विगलित हो जाता है। वह समझ लेता है कि 'मैं' का कहीं कोई अस्तित्व नहीं है और 'मैं' का अस्तित्व नहीं तो 'तू' का भी नहीं। क्योंकि मैं और तू दोनों ही एकाकार हो जाते हैं और तब यह समस्त विश्व ही आत्मा के समान प्रतीत होता है।

## (१२) इच्छा—

इच्छा के अनेक अर्थ हैं—वांछा, अभिलाषा, कामना, चाह, माँग इत्यादि। इच्छा से पहिले 'अव' लगा देने से उसमें निश्चयात्मकता आ जाती है तो उसका तात्पर्य होता है कि इच्छा अवश्य पूरी होगी। जो कामना की गई है उसके मिलने में सन्देह नहीं।

ओंकार की तीन शक्तियाँ प्रसिद्ध हैं—इच्छा, क्रिया, ज्ञान। यह तीनों शक्ति विश्व के कल्याणार्थं संसार में व्याप्त रहती हैं। ओंकार ब्रह्म

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



इच्छा से परे रहता हुआ भी प्राणियों के उपकार की इच्छा करता है और उनकी इच्छाएँ यथा सम्भव पूरी करता है। किन्तु सभी जीवों की सब इच्छाएँ पूरी हो ही जाँय, यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इच्छाओं की पूर्ति प्राणी की अपनी-अपनी इच्छा शक्ति की दृढ़ता पर निर्भर करती है तथा उनकी पूर्त्ति-अपूर्त्ति में जीव द्वारा किये गये कर्म बहुत कुछ बाधक-अबाधक सिद्ध होते हैं।

और जब हम सोचने लगें कि 'अवति इच्छतीति ओंकारः' अर्थात् ओंकार ब्रह्म विश्व पर अनुग्रह करने की दृष्टि से श्रेष्ठ इच्छा करता है। वह भी प्राणियों के कल्याण की कामना करता रहता है। जब सर्गारम्भ करता है तब उसके आरम्भ होने से पहिले उसकी यह इच्छा होती है कि 'एकोऽहं बहुस्याम' में एक से बहुत हो जाऊँ—अनन्त हो जाऊँ।' और इस इच्छा के साथ ही वह एक ही परमात्मा अनन्त रूप से प्रगट होने लगता है।

ओंकार ब्रह्म का किसी भी प्राणी से द्वेष नहीं, ईर्ष्या नहीं, घृणा नहीं, उसके लिये तो सभी प्रेम के पात्र हैं, इसलिए सभी पर दया करता है और सभी को अपनी शुभ कामनाओं के प्रभाव रूप सुख का आयोजन करता है। प्राणियों में दो प्रकार की इच्छाएँ मुख्य रूप से पाई जाती हैं—निम्न स्तरीय और उच्च स्तरीय। निम्न स्तरीय इच्छाएँ त्रिगुणात्मिका प्रकृति के द्वारा उत्पन्न होती हैं, जिनके कारण प्राणी अपने उत्थान के विषय में कुछ कर नहीं पाता। करे भी कैसे? उनकी इच्छाओं का स्वरूप ही उन्हें नीचे की ओर धकेलने वाला होता है। उनमें सत्वगुण की मात्रा न्यून और रजस्-तमस् गुणों की मात्राएँ अधिक होती हैं।

किन्तु उच्च स्तरीय इच्छाएँ सतोगुण की अधिकता वाली होती हैं। ओंकार का साधक अपनी साधना व प्रभाव से रजोगुण और तमोगुण को घटाने में सफल हो जाता है तथा धीरे-धीरे वह उनसे छुटकारा भी

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



पा लेता है । इसी से उसके हृदय में सदा उत्थान की भावनाएँ ही स्फुरित होती हैं । और जब ऐसी भावनाएँ उत्पन्न होती हैं तब जीवन उत्कर्ष की ओर अग्रसर होना स्वाभाविक है । यही ओंकार उपासना का उच्च कामनापरक फल है ।

## (१३) क्रिया—

ऊपर कह चुके हैं कि इच्छा, क्रिया और ज्ञान—यह तीनों ही ओंकार ब्रह्म की जीवोपकारिणी प्रसिद्ध शक्तियाँ हैं, इसलिए इन तीनों का परस्पर में अभिन्न सम्बन्ध है ।

क्रिया की उत्पत्ति तब होती है जब कि इच्छा हो चुकी हो । इच्छा के बिना क्रिया का उत्पन्न होना सम्भव नहीं है । आप किसी व्यक्ति को कोई काम बतायें, वह उसे करना स्वीकार भी कर ले, किन्तु करने की इच्छा न हो तो उस स्थिति में प्रथम तो उससे वह काम होगा ही नहीं । यदि आरम्भ कर भी दे तो मनोयोग न रहने के कारण उसमें प्रायः सफलता मिलती ही नही । इस प्रकार के परिणाम हम प्रायः स्पष्ट ही देखते हैं ।

परमात्मा भी जब कुछ करना चाहता है तब पहिले उसे करने की इच्छा करता है । वस्तुतः उसकी सभी कियाएँ समस्त प्राणियों के लिये ही अनुदान रूप में होती हैं । क्योंकि यह पूरे का पूरा संसार-चक्र प्राणि-समुदाय को लिये हुए ही चलता रहता है, इसलिए उसका कुशल संचालन भी परमात्मा की ही क्रिया है । अतः यह सूत्र बनता हैं कि 'अवति संसार चक्रं चालयतीति ओंकारः' अर्थात् 'ओंकार ही इस संसार चक्र का चालनकर्त्ता, चलाने वाला है ।'

वस्तुतः संसार चक्र में घटनाओं का क्रम भी उत्थान-पतन के रूप में उसी प्रकार चलता रहता है, जिस प्रकार नदी का प्रवाह नीचे-ऊँचे स्थानों में चलता दिखाई देता है । किन्तु नदी का प्रवाह तो सदा नीचे

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



की ओर ही बढ़ता है, क्योंकि जल में निम्नगामिनी शक्ति होती है। फिर भी हम देखते हैं कि पाइप लाइनों के द्वारा जल ऊपर चढ़ता है, किन्तु उस ऊपर चढ़ने में जल की अपनी शक्ति काम नहीं करती। वह तो यान्त्रिक दबाव की—प्रैशर की ही शक्ति होती है।

इसी प्रकार मनुष्य अपने शरीराध्यास के कारण अपनी ऊर्ध्वगामिनी शक्ति को भूला रहता है, इसलिए उसकी भी अधोगामिनी शक्ति ही अधिक कार्यरत रहती है और इसी कारण उसकी ऊर्जा का प्रवाह अधोगामी प्रतीत होता है।

किन्तु ओंकार-साधना से साधक इतना अधिक प्रभाव संचित कर लेता है, जिससे उसकी ऊर्जा का प्रवाह ऊर्ध्वगामी हो सके। ऐसा होने पर उसकी क्रियाशक्ति अत्यन्त प्रखर हो जाती है और तब वह जो कुछ भी कार्य करना चाहे उसी को सफलतापूर्वक सम्पन्न कर सकता है। उस अवस्था में, उसमें जो क्रियाशक्ति विद्यमान रहती है, वह ओंकार की ही होती है।

## (१४) बोध—

बोध के अर्थ ज्ञान, जागृति, समझ, बुद्धि, विवेक, सान्त्वना, अनुमति, निर्देश, प्रकाश, खिलना आदि अनेकों हैं। जब इससे पूर्व 'अव' रूप में उपसर्ग लग जाता है तब यह शब्द संकल्पात्मक, निश्चयात्मक तथा विस्तारात्मक बन जाता है। अवबोध शब्द का तात्पार्यार्थक वाक्य है कुमारसम्भव का—'यौ तु स्वप्नावबोधौ तौ भूतानां प्रलयोदयौ' अर्थात् 'स्वप्न सम्बन्धी जो अवबोध हैं, वे प्राणियों के सर्ग और प्रलय के समान हैं।' इसका तात्पर्य है कि संसार का प्रभव और प्रलय वैसा ही है जैसा स्वप्न में दृश्यात्मक सृष्टि का उत्पन्न होना और जागने पर उन दृश्यों का विलीन हो जाना। जब मनुष्य इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त कर लेता है तब उसे सृष्टि के रहस्यों का भी पता चल जाता है और तभी उसे आत्मा-परमात्मा की अभिन्नता का बोध होता है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



और ब्रह्म तो स्वय ही बोध रूप है और जहाँ बोध है वहीं प्रकाश भी है। क्योंकि अन्धकार तो अज्ञान में ही निहित रहता है। यद्यपि जीवात्मा भी ज्ञान और प्रकाश रूप है, किन्तु सांसारिक मायाजाल के कारण मनुष्य अपने को अज्ञानान्धकार में पड़ा अनुभव करता है। वह अज्ञान का अन्धकार तभी विवृत्त होता है जब अनन्य भाव से, अत्यन्त भक्ति पूर्वक ओंकार ब्रह्म की उपासना की जाती है। इस प्रकार यदि हम कहें कि 'अवति बाधयतोति' अर्थात् 'ओंकार अवबोध कराने वाला है' तो यह कुछ अत्युक्ति नहीं समझी जायगो।

## (१५) भोग–

'भोग' शब्द भी अनेकार्थक है—भक्षण, अधिकार, उपयोग, प्रयोग, शासन, आहार, अनुभव, प्रतीति, भोग्यपदार्थ, फल, नैवेद्य, लाभ, आय इत्यादि बहुत-से अर्थ अकेले भोग शब्द के हैं। यह शरीर भी भोग रूप है और संसार भी। प्राणी मरता है तब उसकी आयु भोग के अनुसार ही होती है। जन्म लेता है तो भी भोग के ही अनुसार और जीवनचर्या चलती है वह भी जैसा भोग होता है, वैसे ही चलती है। भोग की प्राप्ति में कर्म ही प्रधान है, कर्म-फल के रूप में ही भोग उपलब्ध होते हैं, जिनके भोगने का अवसर संसार में ही मिलता है, इसलिए यह संसार ही जीवों के लिये भोग-भूमि है।

किन्तु जब भोग के पूर्व 'अव' धातु का प्रयोग होता है तब उसका रूप होता है अवभोग और जब हम अवभोग के अर्थ पर ध्यान देते हैं तो उसका तात्पर्य होता है कि भोगों से हटने की, भोगों से निवृत्त होने की दिशा में अग्रसर हो रहे हैं और जब भोगों से निवृत्त होने की दिशा में अग्रसर हो रहे हैं और जब भोगों से निवृत्त होता हुआ प्राणी किसी निश्चित लक्ष्य को प्राप्त करले तो वह लक्ष्य ही उसे अपने में लीन कर लेने वाला होगा और उस स्थिति में अवभोग का तात्पर्य बनेगा—'लीनं

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



करोतीति ओंकारः' अर्थात् 'ओंकार अपने में समस्त विश्व प्रपंच को लीन कर लेता है। क्योंकि जो प्रकट करने की सामर्थ्य रखता है, जो स्थिति-काल में भोग स्वरूप पोषण प्रदान करने की सामर्थ्य रखता है, वही उसे अपने में लीन कर सकता है।

और जब हम उनकी इन सब सामर्थ्यों को समझ लेते हैं, यह जान लेते हैं कि निश्चय ही यह समस्त भोग हमें ओंकार की कृपारूप में प्राप्त हुए हैं, तब हम भले प्रकार के ध्यान में लीन होते हुए समाधि-अवस्था को प्राप्त हो सकते हैं। यही साधकों के लिए—योगियों के लिये लयावस्था या तुरीयावस्था है। इसी अवस्था के प्राप्त होने पर जन्म-मरण के चक्र से भी छुटकारा मिल सकता है।

## (१६) धारण–

धारण का अर्थ है ग्रहण करना या पकड़ना। अन्य अर्थ बनते हैं सुरक्षित रखना, स्मरण रखना, अवलम्ब या सहारा लेना आदि। किन्तु जब धारण पहिले 'अव' लगाते हैं तब उसका रूप होता है अव-धारण, जिसकी व्युत्पत्ति होती है 'अव' धातु में धृ+णिच्+ल्युट् प्रत्यय लगने पर और तब इसके अर्थ बनते हैं—निश्चय करना, सीमित करना अथवा जोर देना आदि। जो वस्तु स्वयं धारण न करके किसी अन्य से धारण कराई जाय, वह क्रिया भी अवधारण शब्द के अन्तर्गत ही आती है।

यदि हम अवधारण को अध्यात्म पक्ष में विचारार्थ लें तो पहिले यह निश्चय होगा कि ब्रह्म ओंकार स्वरूप है, किन्तु वह स्वयं कर्त्ता नहीं है, उसके सभी कर्म माया के आधान से—प्रकृति के आश्रय से ही सम्पन्न होते हैं। उसके सभी कार्य प्रकृति करती है, किन्तु मूल कारण वही है। जैसे कोई राजा या सम्राट नगर-रक्षा, व्यवस्था आदि सभी कार्य अपने अनुगतों से कराता है, स्वयं कुछ नहीं करता, किन्तु

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



शासनाध्यक्ष होने के कारण सभी कुछ उसी का किया हुआ माना जाता है। वैसे ही ओंकार ब्रह्म संसार का कर्त्ता, पालक और प्रलय करने वाला माना जाता है। क्योंकि उसी की शक्ति संसार को धारण किये हुए है। उसी ने संसार की स्थिति की सीमा निश्चित की हुई हैं, कालचक्र निरन्तर उसी के संकेत पर गतिशील रहता है। इस प्रकार 'अवधारणा' का अर्थ होता है 'अवति धारयतीति ओंकारः' ओंकार ही इस सबको धारण किये हुए है।

## (१७) वृद्धि–

वृद्धि के अर्थ है—बढ़ोत्तरी, उन्नति, सफलता, सौभाग्य, समृद्धि, समूह, लाभ आदि। क्योंकि इसमें न्यूनता से अधिकता की ओर अग्रसर होने की क्रिया निहित है, इसलिये इसका एक अर्थ परिवर्तन भी बनता है और जब इसके साथ 'अव' उपसर्ग लगता है पहिले तो एक प्रकार की दृढ़ता या निश्चयात्मकता आ जाती है इसमें।

जब हम ओंकार की सामर्थ्य पर ध्यान देते हैं और वृद्धि को 'अव' से योजित करते हैं तब उसका रूप हो सकता है—'अवति वर्द्धयतीति ओंकारः' अर्थात् 'निश्चय ही ओंकार वृद्धि करने वाला है। वह वृद्धि आदि परिवर्तनीय गुणों से रहित होता हुआ भी प्राणियों पर अनुकम्पा करता हुआ प्रजाओं की और ऐश्वर्यों की वृद्धि करता रहता है।

जब समस्त संसार तुरीयावस्था में लीन रहता है, तब वह सूक्ष्माति-सूक्ष्म बना रहता है। किन्तु जब वही संसार प्रकट होने के लिये स्थूल रूप में परिवर्तित होता है तभी व्यक्त हो पाता है। संसार के सूक्ष्म भाव से स्थूल भाव में परिवर्तित होने की यही क्रिया 'वृद्धि' कहलाती है। इससे भिन्न जब स्थूल संसार सूक्ष्म होने के लिये विलीन होता है तब वह जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति से भी भिन्न अवस्था वाला होता है, जिसे अन्य शब्द में 'निवृत्ति' कहते हैं। इस प्रकार विश्व की लयावस्था निवृत्ति है और सर्गावस्था प्रवृत्ति है, वही 'वृद्धि' कही गई है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-


ओंकार ब्रह्म ही उस वृद्धि का मूल कारण है, वही सृष्टि का उत्तरोत्तर विकास करता है और वही साधकों को उच्चस्तरीय प्रतिष्ठा प्राप्त कराता है। प्राणियों का उत्कर्ष और अपकर्ष उसी के द्वारा होता रहता है। किन्तु जो मनुष्य उसकी साधना में लगे रहते हैं, वे निश्चय ही उत्कर्ष रूप वृद्धि के अधिकारी होते हैं।

## (१८) रति—

'रति' शब्द के अर्थ हैं हर्ष, आह्लाद, प्रेम, अनुराग, सत्संग आदि। जब हम इसके पूर्व उपसर्ग रूप में 'अव' लगाते हैं तब उसकी व्युत्पत्ति होती है 'अव' धातु में रम्—क्तिन् प्रत्यय लगाने से। तब उस रूप में 'अवरति' के अर्थ बनते हैं विश्राम, ठहराव, निवृत्ति आदि। इस प्रकार अवरति शब्द भी ब्रह्म की अविकारावस्था का बोधक होता है। यह वही स्थिति है जिसमें ब्रह्म में लय को प्राप्त हो जाता है विश्व, जिसे तुरीयावस्था भी कहते हैं। संसार को विश्राम वहीं मिल सकता है, वही उसके ठहरने का आश्रय स्थान है।

ओंकार ब्रह्म की वह तुरीयावस्था ही आनन्दावस्था है। उसी में प्रेम, अनुराग, हर्ष और उल्लास रहता है। जीवात्माओं को पूर्ण शान्ति मिलती है तो वहीं। किन्तु संसार में भी हर्ष, उल्लास, प्रेम आदि की प्रतिष्ठा रहती ही है। जो साधक ओंकार ब्रह्म की उपासना सांसारिक भोगों की प्राप्ति के लिये करते हैं, उन्हें इच्छित भोग सुलभ होते है। किन्तु जो साधक मोक्ष-प्राप्ति के लिये साधना करते हैं, वे संसार-बन्धन से छूट जाते हैं।

## (१९) याचन—

'याचन' का मुख्य अर्थ है माँग परक विनती। जब कोई व्यक्ति कुछ प्राप्त करने के उद्देश्य से प्रार्थना करे तो उस क्रिया को 'याचन' कहते हैं। इसका तात्पर्य दान माँगने या भीख माँगने से भी है। किन्तु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



वह माँगना किसी मनुष्य से हो सकता है, देवता या ऋषि-मुनि से हो सकता है और परब्रह्म परमात्मा से भी हो सकता है।

जो लोग मनुष्यों से याचना करते हैं; वे प्रायः हीन भावना वाले समझे जाते हैं। देवताओं से याचना करने वाले भी कोई स्थायी वस्तु नहीं पा सकते, क्योंकि देवताओं से की जाने वाली याचना भी कामना-परक होती है।

किन्तु ब्रह्म से जो याचना की जाती है, वह सफल हो सकती है। क्योंकि वह कामना प्रथम तो निष्काम होगी, उसमें कामना नहीं, मोक्ष की इच्छा होगी। यद्यपि कुछ विद्वान् मोक्ष की इच्छा को भी एक प्रकार कामना ही मानते हैं, किन्तु जब साधक परमात्मा से एकाकर के लिये प्रयत्नशील होता है और चाहता है आत्मा से साक्षात्कार करना तब उसके लिये वह जीवन का अन्तिम पुरुषार्थ बन जाती है। ओंकार-साधना से याचना का भाव नष्ट हो जाता है, और तब वह कामना कर्त्तव्य का स्थान ले लेती है। फिर भी यदि उसे याचना ही मानें तो भी कुछ अन्तर नहीं पड़ता।

इस प्रकार ओंकार ब्रह्म की साधना में साधक का याचक भाव न रह कर प्रेम और भक्ति का भाव ही रह जाता है। इसीलिये ज्ञानीजन कहते हैं कि मनुष्य, देवता, भूत-प्रेत आदि से कुछ मत माँगो, यदि उनसे माँगोगे तो अधोपतन का ही अवसर रहेगा। जो कुछ माँगना है परमात्मा से माँगो, क्योंकि वह माँगने पर भी देता है और बिना माँगे तो देता ही है।

## (२०) व्याप्ति

व्याप्त होने की क्रिया को व्याप्ति कहते हैं। न्याय दर्शन के अनुसार व्याप्ति का अर्थ है किसी एक पदार्थ में दूसरे पदार्थ की पूर्णरूप से

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-



मिलावट अथवा फैलाव। अन्य अर्थों में व्याप्ति का अभिप्राय पूर्णता में, प्राप्ति से, प्रसिद्धि से, अधिकृत से भी है।

जब हम 'अव' उपसर्ग के साथ इसे लेते हैं तब उसका अर्थ होता है निश्चित रूप से सर्वव्याप्त या परिपूर्ण होना। ओंकार परिपूर्ण ब्रह्म है, सब जीवात्मा उसी के अंशभूत हैं, इसलिये वे परिपूर्ण ही हैं। इस प्रकार आत्मा और परमात्मा दोनों ही परिपूर्ण हैं और दोनों ही व्यापक हैं। ताण्डय महाब्राह्मण तो स्पष्ट रूप से उसकी व्यापकता का उद्घोष करता हुआ कहता है—'ओंकार एवेदं सर्वम्' अर्थात् 'यह जो कुछ भी है ओंकार है।' इससे ओंकार की परिपूर्णता और सर्वव्यापकता की सिद्धि स्वतः हो जाती है।

## (२१) वाप्ति

यह शब्द प्रतीति का तात्पर्यार्थ प्रस्तुत करता है, यथा—'वाप्ति अवति प्रदर्शयतीति ओंकारः' अर्थात् 'ओंकार इन्द्रियों का विषय न होने के कारण तथा अणुओं में भी प्रतीत न होने के कारण पवित्र अन्तःकरण आत्मा के स्वरूप का प्रदर्शक होता है।

वस्तुतः ओंकार इतना सूक्ष्म है कि किसी भी स्थूल साधन से दिखाई नहीं देता। उसके दर्शन में यदि कोई सफल हो सकता है वह उसका शुद्ध मन वाला साधक ही होना चाहिये। क्योंकि मन जब तक अशुद्ध रहता है तब तक सूक्ष्म तत्वों को ग्रहण करने में असफल ही रहता है। जो साधक आत्मा रूप ओंकार ब्रह्म के दर्शन करने की इच्छा रखते हैं, वे उसके अनुग्रह स्वरूप आत्म-दर्शन या आत्म-अनुभव कर लेते हैं। ओंकार-साधना के द्वारा उन्हें अपने भीतर सूक्ष्म शक्तियों के आविर्भाव का भी अनुभव होता है।

## (२२) तारण—

तारण का अर्थ है तारने की क्रिया। जिस क्रिया से उद्धार हो—मोक्ष की प्राप्ति हो, वह तारण कहलाती है। उसके अन्य अर्थ हैं—नौका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



जहाज, सेतु आदि। भगवान् विष्णु और शिव को भी तारण या तारक कहते हैं। शिवजी जिस तारक मंत्र का उपदेश करते हैं वह भी पर ब्रह्म परमात्मा से सम्बन्धित ही है।

जब हम इस शब्द से पूर्व 'अव' लगा कर 'अवतारण' रूप देते हैं तो उसका अर्थ होता है उतरवाने की क्रिया से। अन्य अर्थ हैं—अनुवाद, पूजन, भूमिका या पृष्ठभूमि आदि। और जब हम कहना चाहें कि 'ओंकार ब्रह्म हमें तारने वाला—उद्धार करने वाला है, तब कहेंगे—'अवति तारयतीति ब्रह्म।'

वस्तुतः ओंकार ब्रह्म में प्राणियों को तारने की पूर्ण सामर्थ्य है। इसलिये जो उपासक उससे मोक्ष की प्रार्थना करता है, उसे वह अवश्य देता है। मोक्ष ही क्या, और भी कोई कामना हो भौतिक या अभौतिक सभी की सिद्धि हो जाती है। किन्तु उपासना होनी चाहिये शुद्ध मन से। यदि मन अपवित्र रहा तो साधना का फलवती होना भी कठिन है।

## (२३) श्रवण—

ओंकार ब्रह्म सभी की सुनता है, उसके कान सभी ओर हैं। कार्य ब्रह्म-रूप हिरण्यगर्भ को पुराण कारों ने चार मुख वाला कहा है। इसका तात्पर्य सर्व श्रोत्र से ही है, यथा 'अवति सर्वं शृणोतीति ओंकारः' श्रुतियों में परमात्मा को इन्द्र रूप में 'सहस्राक्ष' कहा है। वस्तुतः इन्द्र तो परमात्मा का पुत्र रूप ही है। क्योंकि जो उसकी आज्ञा से प्रकृति को ऋतुओं की उत्पत्ति में सहायक होता है, वह पुत्र रूप होना ही चाहिये।

जप के तीन प्रकार हम कह चुके हैं—ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत। ह्रस्व में बहुत मन्द स्वर रहता है, दीर्घ में उच्च स्वर. किन्तु प्लुत में बाह्य रूप से कोई स्वर सुनाई नहीं देता, क्योंकि वह तो मानसिक जप है। उसकी ध्वनि किसी अन्य को सुनाई नहीं देती। फिर भी वह ब्रह्म

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-



उस मानसिक जप को भी सुनने में पूर्ण समर्थ है। जब परमात्मा मन की बातें सुनने-समझने में समर्थ है और जब, जहाँ उसके समक्ष कोई निवेदन किया जाता है, वह उसे अवश्य सुन लेता है। इस प्रकार ओंकार ब्रह्म के कान सब ओर है और घट-घट की बातें सुनता-जानता है।

## (२४) हिंसा–

'अवति हिंसतीति ओंकारः'। यद्यपि ओंकार किसी की हिंसा नहीं करना चाहता। किन्तु युग-धर्म के अनुसार जब सर्ग, स्थिति, प्रलय का समय उपस्थित होता है, तब वह उत्पत्ति, पालन तो करता ही है, संहार या विनाश भी करता है।

स्थिति-काल में भी, जब दैत्य, दानव, असुर आदि पापाचार में प्रवृत्त होते हैं तब उन दुष्टात्माओं के लिये वह क्रूर भी हो जाता है। पापियों के प्रति दया करने का अर्थ होता है पाप-कर्मों को बढ़ावा देना। किन्तु ओंकार पाप का—अधर्म का उन्मूलन करने के उद्देश्य से अवतार रूप में प्रकट हो जाता है और साधुजन की रक्षा में लग जाता है। गीता का 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्' इसी उद्देश्य को व्यक्त करता है।

हम देखते हैं कि सर्जन को जब कोई ऑपरेशन करना होता है तो वह इस बात की परवाह नहीं करता कि रोगी को उससे दुःख होगा, वह डरेगा और शायद रोये भी। किसी बड़े ऑपरेशन के लिये तो उस स्थान को सुन्न कर दिया जाता है या रोगी को बेहोश कर दिया जाता है, किन्तु छोटी-मोटी चीर-फाड़ तो यों ही कर दी जाती है। इस प्रकार रोगी चीखे-चिल्लाये तो भी चिकित्सक पर उसका कोई प्रभाव नहीं होता। क्योंकि उसे तो रोग दूर करना है स्थायी रूप से। उसके बाद तो अपने आप चैन पड़ जायगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



इसी प्रकार ओंकार भी पाप के प्रतीकारार्थ यदि हिंसक होता है तो विश्व-हित में कल्याणकारी ही है। इसलिये उपासकों को भी समझ लेना चाहिये कि वे कोई ऐसा कार्य न करें, जिससे ओंकार ब्रह्म का कोपभाजन बनना पड़े। यदि पाप के त्याग और धर्म के आचरण के साथ उपासना की जायगी तो परमात्मा का अहिंसक रूप ही सदा दिखाई देगा और अपने मन में यदि हिंसा-भाव होगा भी तो ओंकार की उपासना से मिट जायगा।

## (२५) स्वाम्यर्थ—

स्वाम्यर्थ से ओंकार के विश्वाधिपत्य का ज्ञान होता है—'अवति आधिपत्य करोतीति ओंकारः।' वस्तुतः समस्त चराचरमय विश्व का स्वामी होने के कारण ओंकार ही उसका अधिपति है, वही महा सम्राट है। यह संसार उसी की महिमा रूप से प्रकट है और जहाँ जो कुछ ऐश्वर्य दिखाई देता है वह सब उसी का है। सन्त मलूकदास का कथन है—

> राम झरोखे बैठ कर, सबका मुजरा लेय।
> जिसकी जैसी चाकरी, वैसा उसको देय॥

हमारे शरीर में बैठा है परमात्मा और आप जानते ही हैं कि शरीर में दो आँखें बनी हैं झरोखे के रूप में। यदि उन आँखों पर माया का पर्दा पड़ा हो तो कुछ भी दिखाई नहीं देता। माया नष्ट होती है तब पता चलता है कि इस संसार में यदि सत्य को प्राप्त करना है तो अपने भीतर ही प्राप्त होगा। वही आत्मा जो व्याष्टि में है, समष्टि में भी है और उसका जो माया-रहित रूप है, वह परमात्मा है। वही जगदीश्वर है, यह समस्त विश्व-साम्राज्य एकमात्र उसी का है। ईशावास्योपनिषद् ने स्पष्ट रूप से घोषणा की हुई है—'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां-जगत्' जगती में—सृष्टि में जिसे हम जगत् कहते हैं उसमें जहाँ जो कुछ

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-



भी है, सब एकमात्र उसी परमात्मा का है। एकमात्र वही मालिक है है सबका। यह जितने भी भोग उपस्थित किये गये हैं, सब इसीलिये कि उसका उपभोग सभी प्राणी मिल बाँट करें। इसी की दूसरी पंक्ति में यह बात स्पष्ट कर दी गई है—'तेन त्यक्तेन भुजीथा. मा गृधः कस्य स्विद् धनम्' अर्थात् 'इस भोग्य सामग्री को त्याग पूर्वक भोगो, लोभ न करो। क्योंकि यह धन किसका है ? अर्थात् किसी का नहीं।'

इस प्रकार ओंकार के 'अव' धातु से बनने वाले प्रमुख अर्थों पर यहाँ प्रकाश डाला गया है। इस सम्बन्ध में शास्त्रीय मान्यता स्पष्ट है—'अवति इति ओम्' अर्थात् 'जो विश्व रूप से विस्तीर्ण है वह ओम् है। तात्पर्य यह है कि दृश्यमान समूचा दृश्य प्रपंच ओंकार ही हैं।

---

# वर्ण-तत्व-दर्शन

## वर्णमाला और ओंकार

संस्कृत-हिन्दी वर्णमाला में सोलह स्वर और छत्तीस व्यंजन हैं। उन सोलह स्वरों में मुख्य तो पाँच ही हैं—अ, इ, उ, ऋ, लृ, । मूल स्वर यही माने जाते हैं, क्योंकि इन्हीं के मिश्रण से अन्य स्वर बनते हैं, जैसे अ+इ के योग से 'ए' अ+ई मिल कर 'ऐ', अ+ई मिल कर 'ऐ', अ+उ मिल कर 'ओ', अ+उ मिल कर 'औ', अ—अनुस्वार मिल कर 'अं' और अ+अर्ध हकार मिल कर 'अः' बनता है। इससे स्पष्ट है कि सभी स्वरों में 'अ' की ही प्रधानता है।

ओंकार में भी 'अ' की ही प्रमुखता है। जैसे 'अ' वर्णमाला का प्रथम अक्षर है, वैसे ही ओंकार का प्रथम अक्षर है। 'अ' अविनाशी है,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



अक्षर है, अव्यय है, किन्तु वैखरी वाणी स्वरूप है। वह ब्रह्म का स्थूल रूप है। ज्ञानीजन उसे चिन्मय विग्रह कहते हैं।

'अ' का अचिन्त्य स्वरूप—परा-पश्यन्ति वाणी स्वरूप भी है। वह सूक्ष्म से सूक्ष्म भी है, इसलिये श्रेष्ठ है, प्रकृष्ट है और उसकी प्रकृष्टता का प्रतिपादन मूल रूप से ओंकार ब्रह्म की श्रेष्ठता और प्रकृष्टता का ही प्रतिपादन है।

वर्णमाला के पाँच मुख्य स्वरों में मध्य का स्वर 'उ' है और ओंकार में भी 'उ' ही मध्य में आता है। इस कारण दोनों का मध्य में होना भी समान महिमा प्रकट करता है। जब 'अ' के साथ 'उ' का सम्मिलन होता है, तब उससे 'ओ' की ध्वनि निकलती है। यह ध्वनि प्रायः आश्चर्य सूचक है, स्मरण में और पुकारने में यह एक सशक्त माध्यम है। यह जब शब्द का रूप लेता है तब दया और करुणा का रूप होजाता है। इस कारण इसके द्वारा ब्रह्म की दया, कृपा और करुणा प्राप्त होती है।

ओंकार का अन्तिम अक्षर 'म' भी अनेकार्थक है। इसके अर्थों पर यथा स्थान विस्तार से प्रकाश डाला गया है। वर्णमाला में प्रयुक्त सभी व्यंजन पाँच-पाँच के वर्गों में विभाजित हैं। यथा—कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, और पवर्ग—इन पाँचों वर्गों में अन्तिम अक्षर 'म' है। इस प्रकार इसका समायोजन सृष्टि की अन्तिम क्रिया से होता है। इसी से 'अ' सर्गात्मक, 'उ' रक्षात्मक और 'म' प्रलयात्मक सिद्ध होरहा है। वस्तुतः यह स्वयं सिद्धि ही है।

अष्टाध्यायी का एक सूत्र प्रसिद्ध है—'मोऽनुस्वारः' अर्थात् 'म' ही अनुस्वार का रूप ले लेता है। स्पष्ट है कि अनुस्वार रहता है अक्षरों के सिर पर। इसका तात्पर्य है कि अनुस्वार रूप लेने पर 'म' ही शीर्ष स्थान ग्रहण करता है। 'म' का यही अनुस्वार तन्त्र में बिन्दु कहलाता

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-


है। तान्त्रिक मंत्र अनुस्वार (बिन्दु) युक्त होते हैं और बीज मंत्र कहलाते हैं। तान्त्रिकों की मान्यता है कि ऐं, ओं. ह्रीं, क्लीं, श्रीं—यह बीज मन्त्र ओंकार रूप ही हैं। इनमें आत्मा रूप से—बीज रूप से ओंकार ही प्रविष्ट है।

इस प्रकार मकार-बिन्दु ही तान्त्रिक मन्त्रों का बिन्दु रूप बीज है। उक्त पाँच बीज मन्त्रों के अतिरिक्त तन्त्रों में और भी कई बीज मन्त्र हैं, जो सभी युक्त हैं। 'म' से माया का बोध होता है और तन्त्र में सर्वत्र माया की ही विशेषता दिखाई देती है। इसी कारण उसे बिन्दु रूप में ऊपर रखा जाता है।

किन्तु ओंकार-साधना तान्त्रिक साधना के समान लौकिक ही नहीं है, सर्वांगीण साधना है। यह जीवन की समग्रता को साथ लेकर चलती है, इसलिये चारों पुरुषार्थों से सम्पन्न है यह। इसी कारण इस साधना से धर्म की, अर्थ की, काम की और मोक्ष की उपलब्धि हो सकती है। इसका तात्पर्य है कि मनुष्यों का यह लोक तो सुधरता ही है, परलोक भी सुधरता है। इसीलिये भगवान् मनु का कथन है कि वेद के प्रत्येक मन्त्र के आदि में और अन्त में भी 'ओम्' लगाना चाहिये। जो ब्रह्मचारी मंत्र के आरम्भ में ओम् नहीं लगाता उसे वेद पाठ का फल नहीं मिलता, इसी प्रकार जो वटु मन्त्र के अन्त में 'ओम्' नहीं लगाता वह नाश को प्राप्त होता है। महर्षि पाणिनि का तो यहाँ तक कहना है कि यज्ञ में जब वैदिक मन्त्र पढ़े जाँय तब जहाँ कहीं 'टि' आया हो; वहीं-वहीं 'ओम्' का उच्चारण करना चाहिये। 'प्रणवेन्टेः'—इस अष्टाध्यायी के सूत्रानुसार 'टि' के स्थान पर 'ओम्' का आदेश व्याकरण के नियम से ही है।

## ओंकार का प्लुत उच्चारण—

मन्त्रोच्चारण के तीन रूप हैं—ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत। ह्रस्व का तात्पर्य मन्द स्वर से उच्चारण करने से है, दीर्घ का तात्पर्य उच्च स्वर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

). In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



से। प्लुत का अभिप्राय तरंग युक्त उच्चारण से मन्त्र जप करने से है। इनमें प्लुत उच्चारण से ही सर्वोत्तम माना गया है। प्लुत का अर्थ त्रिमात्रिक भी है। अर्थात् प्लुत तीन मात्रा का होता है। यही कारण है कि 'ओम्' शब्द लिखते समय 'ओ' अक्षर के आगे प्लुत के संकेत रूप में ३ का अंक लिख कर उसका रूप 'ओ३म्' बना देते हैं।

'ओ३म्' का उच्चारण करते समय 'ओ' की ध्वनि उच्च और तीव्र करनी चाहिये। क्योंकि 'ओ' के मन्द स्वर से या अस्पष्ट उच्चारण से लाभ नहीं होता। अत्यन्त चंचल, गमनशील मन का निग्रह करने में प्लुत-स्पन्दन अपेक्षित है। इससे वात संस्थान या नाड़ी समूह में सजगता आने लगती है। इसी से मन में स्थिरता और शान्ति की प्राप्ति होती है। इस प्रकार शारीरिक और मानसिक दोनों दृष्टियों से प्लुत उच्चारण का सर्वाधिक महत्व माना जाता है।

वस्तुतः ओंकार चिन्मय है, वह जड़ नहीं, स्वयं चैतन्य स्वरूप है। 'ओ' पर प्लुत लगाने का तात्पर्य यही है कि ओंकार ही सर्वोपरि है, वही सर्वोत्कृष्ट है, वही सर्वेश है। 'प्लुत' तो उसकी महानता का, उसकी प्रभुता का द्योतक है। ओंकार का जप करने वाले साधक को यह रहस्य भले प्रकार समझ लेना चाहिये। क्योंकि प्लुत को अपनी साधना में तथा अपने जीवन में उतरने पर ही साधना प्राणवान् बन पाती है और उसी सब मनोरथों की सिद्धि होती है। वस्तुतः ओंकार-साधना का प्राण प्लुत की निष्ठा ही है। हमें भावना पूर्वक अपनी साधना को करना चाहिये।

## ओंकार का त्रिविध प्रकर्ष–

ओंकार का प्रकर्ष तीन प्रकार का है। 'अ' ऊर्ध्वगामी चुम्बक का सूचक है और 'म' अधोगामी चुम्बक का। इसका तात्पर्य है कि 'अ' उत्तरी ध्रुव है तो 'म' दक्षिणी ध्रुव। 'अ' के उत्कर्षण और 'म' के

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-


अपकर्षण के मध्य परस्पर खिचाव चलता है। यह चालीस हजार किलो-मीटर परिधि वाली और उन्नीस हजार टन वजन वाली पृथिवी इन्हीं तीन (अ, उ, म) के आकर्षण में बँधी रह कर शून्य आकाश में टिकी हुई है।) अ, उ, म की प्रबलता का यह सबसे बड़ा प्रमाण है। ओंकार के उपासक को उसके गुरुत्व में निष्ठा रखनी चाहिये। अ, उ, म के यही तीन प्रकर्ष हैं—उत्कर्षण, संकर्षण और अपकर्षण। यह तीनों जड़ नहीं, स्वत: चैतन्य हैं। क्योंकि प्रणव ब्रह्म है—ओंकार एवेदं सर्वम्' (ताण्डव) अर्थात् 'यह सभी ओंकार हैं।' जो दिखाई देता है वह भी, अदृश्य है वह भी।

श्री नागेश का कथन है कि प्रणव का प्लुत जप ही शुद्ध है, इसके द्वारा आन्तरिक पवित्रता आती है और भावलोक प्रशस्त होता है। ओंकार जप का अन्य प्रकार से उतना फल नहीं होता, जितना प्लुत युक्त शुद्ध उच्चारण से होता है। मन्द स्वर से किये जानें वाले उपांशु जप में भी प्लुत पर पर्याप्त ध्यान दिया जा सकता है। प्लुत के लिये तार स्वर से, जोर से उच्चारण किया जाना अपेक्षित नहीं है। क्योंकि तार स्वर से किया जाने वाला उच्चारण तो 'कीर्तन' कहलाता है।

प्लुत के शाब्दिक अर्थ हैं—तैरता हुआ, उतरता हुआ, डूबा हुआ, कूदा हुआ, ढका हुआ, बढा हुआ आदि। जिसमें तीन मात्राएँ हों वह प्लुत के अभिप्राय का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि अश्व की एक चाल विशेष को भी प्लुत कहते हैं। ओंकार के विषय में जब हम इसका अर्थ लगाने बैठें तब इस वचन पर भी ध्यान देना चाहिये।

एकमात्रो भवेद् ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यंजनं चार्धमात्रकम्॥

इसका अर्थ है कि एक मात्रा ह्रस्व है, दूसरी मात्रा दीर्घ कही जाती है। किन्तु तीन मात्राएँ प्लुत मानी जाती हैं तथा व्यंजन की अर्ध मात्रा। इस प्रकार करना ही महत्वपूर्ण है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

). In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



'प्लुत' शब्द ध्वनि तरंगों से भी जुड़ा है। कुछ शोध-प्रेमी वैज्ञानिकों ने ध्वनि-तरंगों की आश्चर्यमयी क्षमता के नये-नये प्रयोग करके यह निष्कर्ष निकाला कि मंत्रों में ध्वनियाँ होती हैं, जो कि भावना विशेष भावित होने पर उससे निकली हुई सूक्ष्म झंकार प्रति सैकिंड लगभग दस लाख चक्रों (माइक्रो सर्किल्स) की गति से ध्वनि तरंगें—साउण्ड वेव्ज़ निःसृत करती हैं। ऐसा होने पर शरीर के रुग्ण भाग के परमाणुओं में प्रकम्पन उत्पन्न होने से उनमें ताप उत्पन्न होजाता है। कोश-कोश की क्रियाशीलता, रोग-निरोधिनी शक्ति की चैतन्यता को उस ऊष्मा से विशेष गति मिलती है, जिसका परिणाम शत प्रतिशत आरोग्यप्रद होता है।

ध्वनि तरंगों का सर्वाधिक प्रयोग मानसिक रोगियों पर किया गया। जिन रोगियों को असाध्य समझा जाता था, उनमें अधिकांश ध्वनि चिकित्सा से स्वस्थ हो गये। अमेरिका के डॉ. हचिसन तथा अन्य चिकित्सकों ने संगीत की ध्वनि-तरंगों की सहायता से बहुत-से असाध्य रोगी ठीक किये। उनका मत है कि अल्ट्रा साउण्ड उपकरणों के बिना भी भावनाओं से भावित ध्वनि-तरंगों के सम्प्रेषण द्वारा अनेकों अद्भुत कार्य किये जा सकते हैं।

वैज्ञानिकों ने ध्वनि तरंगों के परीक्षण के पश्चात् निष्कर्ष निकाला कि बीस हजार प्रति सैकिंड तक कम्पन वाली ध्वनि को ही मनुष्य सुन सकते हैं, उससे अधिक नहीं। क्योंकि स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म की शक्ति अधिक होती है, इस दृष्टि से बीस हजार प्रति सैकिंड से अधिक कम्पन वाली ध्वनि-तरंगों में असीम शक्ति होती है, इसलिये वे जिस ओर प्रवाहित होती हैं, उस ओर नितान्त परिवर्तन की स्थिति समुपस्थित हो जाती है। मन्त्र-विज्ञान की दृष्टि से भी यही मान्यता है कि भावना से ओत-प्रोत मन्त्र ध्वनि भावना की सूक्ष्मता से ही शक्ति-सम्पन्न होकर केवल जीव-जगत् को ही प्रभावित नहीं करती, वरन् विशेष परिधियों में

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



भी वातावरण को—परिवेश को प्रभावित किये बिना नहीं रहती। किन्तु उसकी शक्ति भावनाओं की सूक्ष्मता पर ही विशेष निर्भर करती है, भावनाएं जितनी ही अधिक सूक्ष्म होंगी, उतनी ही अधिक शक्ति उत्पन्न होगी।

वैज्ञानिकों ने जिस प्रकार की खोज की वह केवल भौतिक विज्ञान तक ही सीमित है। किन्तु हमारे सूक्ष्मदर्शी ऋषि-महर्षियों ने लाखों वर्ष पहिले जिन अनुभवों पर प्रकाश डाला था, उनका सम्बन्ध आध्यात्मिक क्षेत्र से भी उतना ही था, जितना भौतिक क्षेत्र से। तात्पर्य यह है कि प्राचीन मुनियों ने ध्वनि-तरंगों की जो खोज की थी, वह लौकिक और आध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्रों के लिये समान रूप से थी।

इससे सिद्ध है कि ओंकार की प्लुत साधना से शक्ति कोषों का जागरण भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार की शक्तियों के विकास में पूर्ण रूप से समझ कर ओंकार-साधना करें तो उन्हें शीघ्र ही महत्व-पूर्ण उपलब्धि हो सकती है।

---

# ओंकार के दस प्रमुख नाम

योग-सन्ध्या में ओंकार के निम्न दस नाम प्रमुख मानते हुए गिनाये गये हैं—

ओंकारं प्रथवं चैव सर्वव्यापिनमेव च।
अनन्तश्च तथा तारं शुक्लं वैद्युत्मेव च।
तुर्यं हंसं परब्रह्म इति नामानि जानते॥

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr



"ओंकार, प्रणव, सर्वव्यापी, अनन्त, तार, शुक्ल, विद्युत्, तुर्य, हंस और परब्रह्म—ओम् के यह दस नाम जाने जाते हैं।" इन नामों के कारण पर विचार करते हैं—वह एक ही होने के कारण 'ओंकार' है, क्योंकि उसका पवित्र स्पन्दन ॐ के ही आकार में चाक्रिक एवं चक्रबहि: है। नित्य नवीन होने के कारण ही वह 'प्रणव' है. क्योंकि वह कभी पुराना नहीं पड़ता, सदैव एकरस रहता है। अग-जग में ओत-प्रोत एवं सर्वत्र व्याप्त रहने के कारण ही वह 'सर्वव्यापी' कहलाता है। ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ वह विद्यमान न हो। असीम होने के कारण ही 'अनन्त' है, उसका कहीं ओर-छोर नहीं है। साधकों और भक्तों को, सन्तों और मुमुक्षुओं को संसार-सागर से पार करके जन्म-मरण से छुड़ाने वाला होने के कारण ही वह 'तार' कहा जाता है। स्वच्छ, शुद्ध एवं स्वयं प्रकाश होने के कारण उसे 'शुक्ल' कहते हैं। अत्यन्त तेजोमय, अत्यन्त, ज्योतिमय तथा शक्ति पुंज होने के कारण वही 'विद्युत्' या 'वैद्युत्' कहलाता है। परमानन्द स्वरूप एवं नित्य तृप्त होने के कारण वह 'तुर्य' कहा गया है, क्योंकि संसार जब तुरीयावस्था को प्राप्त होता है, तब उसी में लीन रहता है। समस्त देह धारियों में उनका अन्तरात्मा होने के कारण वह 'हंस' है तथा सबसे परे, सबसे सूक्ष्म एवं सबसे प्रकृष्ट होने के कारण 'परब्रह्म' है।

## अथर्वशिरोपनिषद् के अनुसार–

ओंकार के उक्त दस नामों का कुछ प्रकारान्तर से वर्णन और उन नामों की सुन्दर व्याख्या अथर्व शिरोपनिषद् में प्रश्नोत्तरों के रूप में उपलब्ध है, जो कि इस प्रकार है—

**ओंकार**—'अथ कस्मादुच्यते ओंकार: ?' 'यस्मादुच्चार्यमाण एव प्राणानूर्ध्वमुत्क्रामयति तस्मादुच्यते ओंकार:।"

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation; Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran


"ब्रह्म को ओंकार क्यों कहते हैं ? उसका उच्चारण करते समय प्राणों को ऊपर की ओर खींचना होता है, इसीलिये उसे 'ओंकार' कहते हैं।"

**प्रणव**—'अथ कस्मादुच्यते प्रणवः ?' 'यस्मादुच्चार्यमाण एव ऋग् यजुः सामाथर्वङ्गिरसं ब्रह्म ब्राह्मणेभ्य प्रणमयति नामयति च तस्मादुच्यते प्रणवः।'

"ब्रह्म को प्रणव क्यों कहते हैं ? उसका उच्चारण करते समय ऋग्, यजुः, साम, अथर्व, अंगिरस, ब्रह्म ब्राह्मण को प्रणाम करने में आता है, इसलिये उसे 'प्रणव' कहते हैं।"

**सर्वव्यापी**—'अथ कस्मादुच्यते सर्वव्यापी ? 'यस्मादुच्चार्यमाण एव सर्वाल्लोकान्व्याप्नोति स्नेहो यथा पललपिण्डमिव शान्तरूपमोतप्रोतमनुप्राप्तो व्यतिपक्तश्च तस्मादुच्यते सर्वव्यापी।'

"ब्रह्म को सर्वव्यापी क्यों कहते हैं ? क्योंकि जैसे तिलों में तैल व्याप्त होकर रहता है, वैसे ही वह शान्त (अप्रत्यक्ष) रूप से सभी लोकों में ओतप्रोत (व्याप्त) हो रहा है: इसी कारण उसे 'सर्वव्यापी' कहते हैं।"

**अनन्त**—'अथ कस्मादुच्यतेऽनन्तः ?' 'यस्मादुच्चार्यमाण एव तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्चास्यान्तो नोपलभ्यते तस्मादुच्यतेऽनन्तः।'

"ब्रह्म को अनन्त क्यों कहते हैं ? क्योंकि इसका उच्चारण करते समय उच्च, निम्न और तिर्यक (ऊपर, नीचे, इधर-उधर) कहीं भी अन्त दिखाई नहीं देता, इसीलिए उसे 'अनन्त' कहते हैं।"

**तार**—'अथ कस्मादुच्यते तारम् ?' 'यस्मादुच्चार्यमाण एव गर्भ जन्म व्याधि जरा मरण संसार महाभयात्तारयति त्रायते च तस्मादुच्यते तारम्।'

"ब्रह्म को तार क्यों कहते हैं ? क्योंकि यह उच्चारण करते ही गर्भ, जन्म, रोग, बुढ़ापा, मृत्यु आदि रूप संसार-सागर के महाभय से तार देता है, इसीलिये इसे तार कहते हैं।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran



**शुक्ल**—'अथ कस्मादुच्यते शुक्लम् ?' 'यस्मादुच्चार्यमाण एव क्लन्दते क्लामयति च तस्मादुच्यते शुक्लम् ।"

"ब्रह्म को शुक्ल क्यों कहते हैं ? क्योंकि यह उच्चारण मात्र से ही साधक पर अनुग्रह करने के लिये उसके हृदय में क्लेद (श्रम या ग्लानि) उत्पन्न कर देता है, जिससे संसार और उसके विषयों के प्रति ग्लानि-भाव उत्पन्न होकर पवित्रता आती है, इसीलिये इसे 'शुक्ल' कहते हैं ।

**सूक्ष्म**—'अथ कस्मादुच्यते सूक्ष्मम् ?' 'यस्मादुच्चार्यमाण एव सूक्ष्मो भूत्वा शरीराण्यधिष्ठति सर्वाणि चाङ्गान्यभिमृश्यति तस्मादुच्यते सूक्ष्मं ।"

"ब्रह्म को सूक्ष्म क्यों कहते हैं ? क्योंकि यह उच्चारण करते ही सूक्ष्म रूप मे स्थावरादि समस्त देहधारियों को अपने अधिकार में कर लेता और उनके सभी अंगों को अपने कोमल स्पर्श का अनुभव कराता है, इसलिये उसे 'सूक्ष्म' कहते हैं ।"

**वैद्युत्**—'अथ कस्मादुच्यते वैद्युतम् ?' 'यस्मादुच्चार्यमाण एव व्यक्ते महति तमसि द्योतयति तस्मादुच्यते वैद्युतम् ।'

"ब्रह्म को वैद्युत् क्यों कहते है ? क्योंकि यह उच्चारण मात्र से हृदय में व्यक्त होकर व्याप्त घोर अन्धकार में अपना प्रकाश फैला देता है, इसीलिये इसे 'वैद्युत्' कहते हैं ।"

**परब्रह्म**—अथ कस्मादुच्यते परंब्रह्म ?' 'यस्मात् परमपरं परायणं च वृहद् वृहत्या वृंहयति तस्मादुच्यते परंब्रह्म ।'

"ब्रह्म को परमब्रह्म क्यों कहते हैं ? क्योंकि यह हृदय में पर और परम की परायणता उत्पन्न कर, हृदय रूपी वीणा को वृहती छन्द (ओंकार-गान) से झंकृत कर देता है, इसीलिये उसे 'परब्रह्म' कहते हैं ।"

**एक**—'अथ कस्मादुच्यते एकः ?' 'यः सर्वान्प्राणान्संभक्ष्य संभक्षणेनाजः संसृजति विसृजति तीर्थमेके व्रजन्ति तीर्थमेके

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



दक्षिणाः प्रत्यञ्च, उदञ्चः प्राच्योऽभिव्रजन्त्येके तेषां सर्वेषां इह सद्गतिः। साकं स एको भूतश्चरति प्रजानां तस्मादुच्यत एकः।'

"ब्रह्म को एक क्यों कहते हैं ? क्योंकि यह सब प्राणों का भक्षण करके अजरूप से उत्पत्ति और संहार करता है, तथा जो तीर्थ यात्रा के लिये पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण आदि दिशाओं में जाते हैं उन सबकी यही एक गति है। सब प्राणियों में समान रूप से विद्यमान रहने के कारण भी यह 'एक' कहलाता है।"

इस प्रकार ब्रह्म के यह दसों नाम ओंकार ब्रह्म की दस महती विशेषताओं पर अपने ढँग से प्रकाश डालते हैं। इसलिये इनका मनन करते हुए ओंकार-उपासना में उपासक को दत्तचित्त होना चाहिये। यही शास्त्रों का आदेश है।

---

# अक्षर-तत्व-दर्शन

## आनन्दरूप त्र्यक्षर ब्रह्म–

शास्त्रों की —उपनिषदों की—ब्राह्मण ग्रन्थों की मान्यता है कि ओंकार ही वरदायक है, वही अभय का देने वाला है, वही मृत्यु रूप से सभी का संहार करता है, वही अपेक्षा होने पर मृत्यु को भी जीत लेता है। उसमें परम आकर्षण शक्ति है, वही प्राणियों में प्राण रूप से प्रतिष्ठित है। बलवानों में जो बल है, वह उसी का है। जीवितों में जीवन भी वही है। वही शुद्ध तत्व है। इसलिये उसी का स्मरण किया

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

). In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr



जाना कर्तव्य है। यजुर्वेद का कथन है—'ॐ' क्रतो स्मर क्लिवे स्मर कृतᳬ स्मर' अर्थात् 'ॐ का ही स्मरण करे', क्योंकि 'ॐ खं ब्रह्म' अर्थात् 'ॐ ही सर्व व्यापक ब्रह्म है। उसकी प्रथम मात्रा अकार ही आनन्द रूप है, दूसरी मात्रा उकार ब्रह्म रूप तथा तीसरीं मात्रा मकार प्रणव रूप—प्राण रूप है। अनेक प्रकार से सम मात्रा वाला यह ब्रह्म ही ओंकार कहलाता है। यही संसार-जाल में फसाता और यही संसार-जाल से छुड़ाता है। सब कुछ प्राणी के कर्म पर निर्भर होने के कारण ही उसे फल-भोग की प्राप्ति ओंकार से ही होती है। शास्त्र का ही वचन है—

प्रत्यगानन्दं ब्रह्म पुरुषं प्रणव स्वरूपं अकार उकार मकार इति। यं प्रणवं तदेतदोमिति यमुक्त्वा मुच्यते योगी जन्म संसार बन्धनात्।

'प्रत्येक में व्याप्त आनन्द रूप ब्रह्म पुरुष है, तथा यही अकार उकार, मकार रूप त्र्यक्षर प्रणव है, यही ओंकार है। इसी का उच्चारण करते हुए योगी पुरुष संसार-बंधन से मुक्त हो जाते हैं।'

अकार, उकार, मकार रूपिणी तीन मात्राओं के अपने-अपने गुण, कर्म, स्वभाव के अनुरूप ही नाम भी हैं। वायु पुराण में इनके सम्बन्ध में कहा है—

प्रथमा वैद्युती मात्रा द्वितीया तामसी स्मृता।
तृतीया निर्गुणी विद्यान्मात्रामक्षर गामिनीम्॥

"पहली मात्रा का नाम 'वैद्युती' है, दूसरी मात्रा का नाम 'तामसी' और तीसरी मात्रा 'निर्गुणी' है। इस प्रकार अक्षरों के रूप में गमन करने वाली इन मात्राओं का ज्ञान सम्पादन अवश्य कर्त्तव्य है।"

इन मात्राओं का नामकरण निरी कल्पना अथवा केवल भावात्मक रूप से ही नहीं हुआ है। जो विद्युत् के समान व्यक्त हो, प्रकाशित हो वही 'वैद्युती' कहला सकती है। अन्यत्र कहा है कि ओंकार की प्रथम

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



मात्रा विश्वरूप से व्यक्त है और विश्व तो चमकने और लुप्त होने के स्वभाव वाला ही है। वह सर्गकाल में व्यक्त होता और प्रलय काल में विलीन होता है, इसीलिये ज्ञानीजन विश्व को भी विद्युत् के समान क्षणिक ही मानते हैं। इसका तात्पर्य है, कि ओंकार की प्रथम मात्रा विश्वरूप में व्यक्त होने के कारण ही 'वैद्युती' है। विद्युत् संसार में ही चमकती है।

दूसरी मात्रा के 'तामसी' कहने का अभिप्राय प्रलय काल से सम्बन्धित रौद्री शक्ति से है। भगवान् रुद्र ही अपनी इस शक्ति को साथ लेकर संहार-कार्य में लग जाते हैं। उस समय उनका तामसी स्वभाव रहता है। क्योंकि संहार जैसे भयंकर कार्य का किया जाना तामसी स्वभाव से ही सम्भव है।

तीसरी मात्रा का 'निर्गुणा' कहा जाना तुरीयावस्था का सूचक है। है। प्रलय काल के पश्चात् जब समस्त संसार लय को प्राप्त हो जाता है तब एकमात्र प्रणव ब्रह्म ही शेष रह जाता है। वह ब्रह्म भी तुर्य या तुरीय कहलाता है और उसकी अवस्था भी तुरीयावस्था होती है। योग-चूडामण्युपनिषद् में इन मात्राओं के विषय में कहा है—

इच्छा क्रिया तथा ज्ञानं ब्राह्मी रौद्री च वैष्णवी।
त्रिधा मात्रा स्थितिर्यत्र तत्परंज्योतिरोमिति॥

"इच्छा, क्रिया और ज्ञान यह तीन शक्तियाँ अकार, उकार, मकार में विद्यमान है। यही तीनों क्रमशः ब्राह्मी, रौद्री और वैष्णवी हैं। यही तीनों मात्राएँ परम ज्योति स्वरूप ओंकार में निहित हैं।"

शाण्डिल्योपनिषद् में शाण्डिल्य और अथर्वा के संवाद का वृत्तान्त मिलता है, जिसमें शाडिल्य का प्रश्न था कि 'जो परब्रह्म, एक अक्षर, निष्क्रिय, मंगलरूप तथा सत्तामात्र है, उसके द्वारा यह संसार किस प्रकार उत्पत्ति, स्थिति और लय को प्राप्त होता है ? इसके उत्तर में अथर्वा

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

). In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



कहते हैं—'शाडिल्य ! यह परब्रह्म निष्क्रिय और अक्षर रूप तो है ही, साथ ही—

अथाप्यस्यारूपस्य ब्रह्मस्त्रीणि रूपाणि भवन्ति निष्कल सकलं सकल निष्कलं चेति।

"इस परब्रह्म के तीन स्वरूप हैं—निष्कल, सकल और सकल-निष्कल।" प्रथम निष्कल का रूप कहते हैं—'जो सत्य, विज्ञान, आनन्द; क्रियाशून्य, निरंजन, सर्व व्यापी, अत्यन्त सूक्ष्म, सब ओर मुख वाला, कहे जाने में अशक्य और अमर—यह उस ब्रह्म का निष्कल रूप है।

## त्रिवर्णी माया से विभिन्न रूप–

इस परब्रह्म की जो सहज अविद्या मूल प्रकृति और माया है, वह लाल, श्वेत और काली है। उसकी सहायता पाकर यह देव विभिन्न रूप धारण कर सभी का नियंता होता है, यही इसका सकल-निष्कल रूप है।

उसी परब्रह्म ने ज्ञानमय तप से वृद्धि पाकर इच्छा की कि 'मैं एक से अनेक रूपों में प्रकट हो जाऊँ' तब उसने तपस्या की जिससे कामना रूप में तीन अक्षर (अ, उ, म) तीन आकृतियां प्रकट हुईं। तीन पद वाली गायत्री; तीन वेद, तीव वर्ण और तीन अग्नियाँ उत्पन्न हुईं। वही ओंकार ब्रह्म सभी ऐश्वर्यों से सम्पन्न सर्व व्यापी, सभी के हृदय में निवास करने वाला, माया के साथ क्रीड़ा करने वाला है। वही ब्रह्मा; विष्णु, रुद्र, इन्द्र रूप है तथा वही सब देवताओं और प्राणियों में विद्यमान है। आगे, पोछे, उत्तर, दक्षिण, नीचे, ऊपर एकमात्र वही है।'

यह जितना नाम-रूपात्मक जगत् है, सब ओंकार है। सभी नाम एकमात्र ओंकार से बनते हैं, क्योंकि जितने भी रूप हैं, उनमें बिन्दु, रेखा और गोलाई यही तीन सिद्धान्त निहित हैं। प्रणव में यह तीनों ही हैं—बिन्दु है, रेखा है, उकार एवं चन्द्र बिन्दु में गोलाई है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



शास्त्रों के अनुसार हंस रूप ओंकार में सभी लोक विद्यमान हैं। नाभि में महर्लोक, कटि में स्वर्ग लोक, जानुओं में भुवर्लोक, और चरणों में भूलोक। जनलोक हृदय में, तपलोक कण्ठ में तथा सत्यलोक भौंहों के मध्य में रहता है। यही ओंकार अग्नि है, उसका रूप अग्नि के मण्डल के समान है, इसलिये इसकी प्रथम मात्रा आग्नेयी है। दूसरी मात्रा वायव्या है, क्योंकि उसका रूप वायुमण्डल के समान है। तीसरी मात्रा सूर्या है, क्योंकि उसका प्रकाश सूर्यमण्डल जैसा है। चौथी अर्धमात्रा वारुणी कहलाती है, क्योंकि उसका रूप वरुण अर्थात् जल के समान है।

उक्त चारों मात्राओं में तीन-तीन मुख हैं, जो कि अत्यन्त तेजोमय, अत्यन्त सुन्दर, अत्यन्त तेजोमय और अत्यन्त आकर्षक है। इसीलिये ओंकार को द्वादश कलात्मक कहते हैं। उन बारह कलाओं के विषय में भी समझ लेना चाहिये।

## ओंकार की बारह कलाएँ—

ओंकार की जो बारह कलाएँ बताई गई हैं, उनके नाम भी अपनी-अपनी पृथक् विशेषताएँ रखते हैं—घोषणी, विद्युन्माला, पतंगिनी, वायुवेगिनी, नामधेया, ऐन्द्री, वैष्णवी, शांकरी, महती, ध्रुवा, मौनी, और ब्राह्मणी। इन्हीं बारह मात्राओं में समस्त विश्व समाविष्ट है।

स्वच्छन्द तन्त्र ने प्रणव की बारह कलाओं को इस प्रकार गिनाया है—अकार, उकार, मकार-बिन्दु, अर्द्धचन्द्र रोधिनी, नाद, नादान्त, कुण्डलिनी, व्यापिनी, शक्ति, समना और उन्मना। इन्हीं बारह कलाओं के द्वारा पृथिवी से शिव पर्यन्त समस्त ब्रह्माण्ड का संचालन होता रहता है।

## ओंकार-कलाओं के विविध रूप—

नेत्र-तन्त्र के अनुसार पाँव के अंगूठे से हृदय-पर्यन्त अकार की गति है। ब्रह्म, दैदत्य, सद्योजात स्वरूप अकार अपनी आठ कलाओं से युक्त

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

). In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



हुआ सभी जीवों में व्याप्त है। अकार की जो आठ कलाएँ मानी हैं, वे हैं—सिद्धि, ऋद्धि, द्युति, लक्ष्मी, मेधा, क्रान्ति, धृति और स्वधा। इन कलाओं की व्याप्ति पृथिवी से महत्तत्व पर्यन्त है।

उकार की तेरह वाम कलाएँ हैं—रजा, रक्षा, रति, पाल्या, काम्या, तृष्णा, मति, क्रिया, वृद्धि, माया, नाड़ी, भ्रामणी और मोहिनी। इन वैष्णवांश में विद्यमान कलाओं की स्थिति हृत्प्रदेश से कण्ठ पर्यन्त मानी गई है।

मकार की आठ अघोर कलाएँ हैं—तमा, मोहा, क्षुधा, निद्रा, मृत्यु, माया, भया और जरा। इनकी अवस्थिति कण्ठ से लेकर तालु पर्यन्त मानी जाती है।

ओंकार रूप तत्पुरुष की चार कलाएँ हैं—निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या और शान्ति। इनका स्थान भौंहों के मध्य है और यह बिन्दु रूप से परमात्म तत्व में प्रतिष्ठित हैं।

ईशान प्रणव की पाँच कलाएँ हैं—तारा, सुतारा, तरणी, तारयन्ती, सुतारणी। इनका सम्बन्ध सदैव शिवरूप नादतत्व से बना रहता है। अर्धचन्द्र की पाँच कलाएँ ज्योत्स्ना, ज्योत्स्नावती, सुप्रभा, विमला और शिवा हैं तथा पाँच निरोधिका कलाएँ मानी गई हैं—सन्धनी, रोधनी, रौद्री, ज्ञानबोधा और तमोपहा। नाद की चार कलाएँ प्रसिद्ध हैं—इन्धिका, दीपिका, रोचिका, मोचिका तथा नादान्त की भी एक कला है जिसे ऊर्ध्वगा कहते हैं। क्योंकि इसकी गति उपर की—ओर मानी जाती है।

शक्ति-कलाएँ पांच हैं—सूक्ष्मा, सुसूक्ष्मा, अमृता, अमृत संभवा और व्यापिनी। इनमें भी व्यापिनी की चार कलाएँ हैं—व्यापिनी, व्योमरूपिणी, अनन्ता और अनाथा। समना की छः कलाएँ हैं—सर्वज्ञा, सर्वगा, दुर्गा, सवना, स्पृहणा और धृति। यह सभी कलाएँ अपनी-अपनी विशिष्टता लिये हुए है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



## प्रणव की चार मातृका-कलाएँ—

प्रणव की चार मातृका-कलाएँ प्रसिद्ध हैं—केवला, बिन्दु संयुक्ता, सविसर्गा और शोभया। इनमें से केवला नाम की कला विद्या प्रदान करने वाली है, जिसके द्वारा साधक समस्त विद्याओं का जानकार बन जाता है। इस कला की साधना करने वाले के लिये कोई ऐसी विद्या नही जो अप्राप्य रह सके।

बिन्दु संयुक्ता नाम की कला सभी धनों के प्रदान में समर्थ है। साधना से साधक को धन, सम्पत्ति और विविध प्रकार के वैभव की प्राप्ति हो सकती है।

सविसर्गा नाम की कला सुयोग्य पुत्र के देने वाली है। जो साधक इस मातृका कला की उपासना करते हैं, उसकी भी सन्तान-कामना पूरी हो जाती है।

शोभया नाम की मातृका कला समस्त प्रकार की वृद्धि उत्पन्न और उत्कर्ष के करने वाली होती है। इसकी साधना करने वाले साधक के सभी प्रकार के अभीष्ट पूर्ण होते हैं।

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव और कामेश—यह छः शिव माने गये हैं। यह छओं प्रणव के कला रूप होने के कारण प्रणव से ही उत्पन्न हुए माने जाते हैं।

इस प्रकार परब्रह्म प्रणव ही अपनी विविध कलाओं के सहित इस संसार में विद्यमान है। नेत्र तन्त्र के अनुसार सभी देहधारियों में ओंकार की ही जीवनी शक्ति है—

प्रणवः प्राणीनां प्राणो जीवनं संप्रतिष्ठितम्।
गृहणाति प्रणवः सर्व कलाभिः कलयेच्छिवम्॥

"प्रणव ही सब प्राणियों में प्राणरूप से विद्यमान है। इसी के द्वारा शरीरों में जीवन रहता है। प्रणव के द्वारा ही सब कलाएँ सम्यक रूप से ग्रहण की जाती हैं, वही शिवरूप हैं।"

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



योग तत्वोपनिषद् के अनुसार सभी कुछ प्रणव में पिरोया हुआ है, वही परमपद है। जैसे फूल में महक होती है, दूध में घृत होता है, तिलों में तैल होता है, पत्थर में स्वर्ण होता है, वैसे ही प्रणव सब में व्याप्त है। हृदय-प्रदेश में जो कमल है, उसका मुख नीचे की ओर है किन्तु डंडी ऊपर की ओर है। नीचे बिन्दु स्थित है, उसी में मन रहता है और—

> अकारे रेचितं पद्ममुकारेणैव भिद्यते।
> मकारे लाभते नादमर्धमात्रा तु निश्चला।
> शुद्ध स्फटिक संकाशं निष्कलं पापनाशनम् ॥

'अकार' में रेचित किया हुआ कमल 'उकार' में भेदा जाता है और 'मकार' में नाद को प्राप्त होता है। अर्धमात्रा निश्चल, शुद्ध स्फटिक के सदृश्य निष्कल और पापनाशक है।

## त्रिविक्रम के तीन पग अ, उ, म—

पुराणों में वामन भगवान् की कथा मिलती है, जिन्होंने दैत्यराज बलि से तीन पग स्थान माँगा और उन तीन पगों में तीनों लोक नाप लिये। इस कथा का संकेत ऋग्वेद में भी मिलता है, वहाँ भगवान् विष्णु त्रिविक्रम नाम से प्रसिद्ध हुए। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी यह वृत्तान्त मिलता है।

त्रिविक्रम के यह तीन पग किसी महत्व पूर्ण रहस्य की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं। प्राचीन ऋषि-मुनियों ने इस पर अपने-अपने ढङ्ग से विचार भी किया है। यास्क मुनि ने इस सम्बन्ध में शाकपूणि और ओणिवाम का सम्मति के विषय में कहा है कि शाकपूणि का विष्णु के तीन पगों से तात्पर्य पृथिवी, अन्तरिक्ष और आकाश से है, जो क्रमशः नीचे से ऊपर की ओर जाते हैं। ओणिवाम के तीन पगों का सम्बन्ध सूर्य की दैनिक क्रिया—उदय, स्थिति और अस्त से योजित किया है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



विष्णु पुराण के अनुसार 'संसार की सृष्टि, स्थिति और प्रलय के उद्देश्य से भगवान् विष्णु ही ऋक्, यजुः, साम रूप से सूर्य के भीतर निवास करते हैं। वस्तुतः यह वेदत्रयी विद्या भगवान् विष्णु की ही अंगभूता है।' गायत्री मन्त्र में भी सविता के रूप में, सूर्य में विद्यमान जिस तत्व की उपासना की जाती है, वह परब्रह्म की ही उपासना है तथा गायत्री मंत्र में भी जो आदि में ओंकार लगाया जाता है वह प्रणव ब्रह्म ही है। उसकी तीन व्याहृतियाँ भुर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक वाली हैं। इनका तात्पर्य भी क्रमशः पृथिवी, अन्तरिक्ष और आकाश (स्वर्गलोक) से ही है। गायत्री के तीन पाद भी भगवान् त्रिविक्रम के तीन पाद तथा ओंकार की तीन मात्राए मानी जाती हैं।

किन्तु प्रश्नोपनिषद् ने इन मात्राओं का सम्बन्ध मर्त्यलोक चन्द्रलोक ब्रह्मलोक से माना है—एक मात्रिक की उपासना से ऋग्वेद की ऋचाओं द्वारा साधक को मर्त्यलोक मिलता है; द्विमात्रिक साधना से यजुर्मन्त्रों के चंद्रलोक और त्रिमात्रिक साधना से साम गान द्वारा ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।

इससे मान्यता होती है कि संसार ही त्रिमात्र स्वरूप है। विश्व की सृष्टि, स्थिति और प्रलय ओंकार की ही तीन मात्रा रूप से है। अकार विश्व है, वह सृष्टि सूचक है, उकार तैजस है, यह स्थिति सूचक है और मकार प्राज्ञ है, यह प्रलय सूचक है। इस प्रकार जानने वाला ज्ञानी समस्त विश्व को जानने में समर्थ है। संसार के निर्माण में तीन तत्व विशेष सहायक हैं—सत्, रज और तम। सतोगुण से ब्रह्मा का, रजोगुण से विष्णु का और तमोगुण से रुद्र का आविर्भाव माना गया है। किन्तु यह तीनों गुण प्रत्येक शरीर में विद्यमान हैं। पर, आवश्यक नहीं कि तीनों गुण सभी में साम्यावस्था में रहें। जो गुण जिसमें अधिक व्यक्त रहता है वही उसकी प्रकृति कहा जाता है। सतोगुण की अधिकता

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

). In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



वाला मनुष्य सदैव सदाचारी रहता है, उसके विचारों में आध्यात्मिकता का ही अधिक समावेश रहता है।

रजोगुणी मनुष्य सांसारिक विषयों में आसक्ति रखता हुआ भी अधिक मदहोश नहीं होता। वह विषयों को भोगना चाह कर भी परमात्मा से डरता है। उसे लज्जा होती है कि कहीं कोई निन्दा न करने लगे—कहीं मुझे अपयश का भागी न होना पड़े। ऐसा व्यक्ति पाप कर्म करते हुए डरता तो है ही।

किन्तु तमोगुणी मनुष्य अधिक क्रोधी हो सकता है, उसमें क्रूरता और हिंसाभाव रह सकते हैं : वस्तुतः सतोगुण की वृद्धि हृदय में ज्ञान का प्रकाश करती है तो रजोगुण की वृद्धि ज्ञान और अज्ञान दोनों में फँसाये रखती है। पर, तमोगुण तो जीवन को ही अन्धकारमय बना देता है। उस अन्धकार से उबरने के लिये ही वैदिक उपासक परमात्मा से प्रार्थना करता है—'तमसो मा ज्योर्गमय'—'मुझे अन्धकार से प्रकाश में ले चलो।' मनुष्य पृथिवी पर जन्म-मरण के चक्र में घूमता है तो अज्ञान रूप अन्धकार के कारण ही घूमता है। जो लोग सुख-भोग की लालसा को नष्ट नहीं कर पाते वे तैजस् के उपासक अन्तरिक्ष की ही प्राप्ति में सफल हो सकते हैं। किन्तु जो ज्ञानी पुरुष सब कामनाओं को छोड़ देते हैं, वे स्वर्गलोक के अथवा मोक्ष के अधिकारी होते हैं।

इस प्रकार संसार की तीन गतियाँ ओंकार के ही अधीन हैं। वही सत, रज, तम के समावेश द्वारा पंचभूतात्मक सृष्टि उत्पन्न करता है, वही पालन और प्रलय करता है, उसी की तीन मात्राएँ व्यक्त रहकर जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति कारण होती हैं, उसी की अर्धमात्रा विश्व को तुरीयावस्था में लीन रखती है। वही जब अनेक होना चाहता है तब प्रकृति को क्रियात्मकता प्रदान करता है, वही जीव रूप से शरीरों में प्रविष्ट होता है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



## प्रकृति, जीव और ईश्वर—

संसार की अभिव्यक्ति में प्रकृति ही कारण होती है। वही परब्रह्म परमात्मा की महती माया है। परमात्मा के संकेत पर विश्व का सृजन करती है और वही उसकी वृद्धि में कारण होती है। संसार में शक्ति-रूप से जिन-जिन देवियों का पूजन किया जाता है, मे सब रूप प्रकृति के ही हैं।

और प्रकृति ओंकार की प्रथम मात्रा के सहयोग से ही सब कुछ कर पाती है। क्यों कि ओंकार की प्रथम मात्रा अकार ही विश्वरूप है, वही प्रकृति को सक्रिय बनाकर विश्वरूप में प्रकट होती है। इसीलिए विज्ञजन इसी मात्रा को सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजी का रूप मानते हैं। ब्रह्मा का प्राकट्य इसी मात्रा से हुआ है और इस प्रकार द्रह्मा, प्रकृति और अकार तीनों में पारस्परिक अभेद है।

यह तो हुई सर्गारम्भ कीं बात, उसके वाद शरीरधारियों की अभिव्यक्ति होती है। शास्त्रों के अनुसार चौरासी लाख योनियाँ हैं और प्रत्येक योनि में असंख्य शरीरधारो रहते हैं। उन सभी शरीरों में जीवात्मा का निवास रहता है। मनुष्य से लेकर पशु-पक्षी, कीट-पतंग तक में प्रभु-अंश के रूप में परमात्मा विद्यमान है और वही अपनी-अपनी सुविधानुसार रहने की, चलने-फिरने की, खाने-पीने की व्यवस्था चाहता है। अन्य योनियों के अतिरिक्त मनुष्य को वैसा करने की सामर्थ्य भी है। वह अपने लिए मकान, वाहन, धन-सम्पति आदि के रूप में बड़े-बड़े सामान जुटाता है और सदा रंगीन सपने देखता है।

ओंकार की दूसरी मात्रा उकार से इस स्थिति का अटूट सम्बन्ध है। यही मात्रा स्वप्नवस्था रूप है तथा यही प्राणियों को माया-मोह में डालती है। जब तक मनुष्य इसके अधीन रहता है, तब तक उसे न प्रवृत्ति के यथार्थ रूप का ध्यान रहता है, न निवृत्ति के रूप का ही।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr



किन्तु जब उसे माया-मोह के मिथ्यात्व का अनुभव होता है तब सांसारिक विषयों से अरुचि उत्पन्न होकर आत्मा का ज्ञान होने लगता और जब वह आत्मा को जानता है, तब परमात्मा को परमेश्वर को भी जानने में समर्थ होता है। उस स्थिति का सम्बन्ध मुख्य रू ओंकार की तीसरी मात्रा 'मकार' से हैं। मकार सुषुप्ति रूप है, प्राज्ञ है, जहाँ सुषुप्ति है वहाँ न जागरण है, न स्वप्न ही है—न सांसारिक विषय हैं. न उनके भोगने की कामना ही है। केवल ईश्वर-प्राप्ति की इच्छा ही शेष रहती है जो अर्धमात्रा में उपलब्ध हो जाता है।

इस प्रकार ओंकार की तीन मात्राओं का सम्बन्ध क्रमशः प्रकृति, जीव और ईश्वर तीनों से है। ओंकार का साधक इस सबका अनुभव करता हुआ अन्त में परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

वस्तुतः ओंकार ब्रह्म से सम्बन्धित जो ज्ञान है, वह अत्यन्त गूढ़ है। उसमें जो रहस्य भरा है, उसे हर कोई समझ नहीं पाता। ससार में जो अनेकानेक देवता पूजे जाते हैं, वे सभी ओंकार के ही व्यक्त रूप हैं। वे सब ओंकार की शक्ति पाकर ही संसार के उपकार में प्रवृत्त रहते हैं। उन-उन देवताओं के आयुध भी ओंकार की मात्राओं से हीं सम्बन्धित हैं। ब्रह्मा के आयुध हैं वेद, वे तो ओंकार से उद्भूत हैं ही, विष्णु का आयुध जो सुदर्शन चक्र है, उसमें लगे हुए तीक्ष्ण दाँते भी ओंकार की कला रूप हैं। सुदर्शन चक्र में अनन्त दाँते हैं जो ओंकार की अनन्त कलाओं से तादात्म्य स्थापित किये हुए हैं। शिवजी का त्रिशूल तो स्पष्ट रूप के ही अकार, उकार, मकार रूप है।

## शिव का त्रिशूल-त्रिमात्रिक ओंकार—

शिवजी के आयुध रूप में उनका त्रिशूल विख्यात है। यद्यपि पिनाक, पाशुपतास्त्र भी उनके प्रसिद्ध आयुध ही हैं और वे भी ओंकार की ही शक्ति से सम्पन्न हैं, किन्तु 'त्रिशूल' में तो ओंकार साक्षात् रूप में ही व्यक्त

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



है। क्योंकि उसमें अद्वितीय शक्ति है, उसकी समानता अन्य कोई आयुध नहीं कर पाता। क्योंकि त्रिशूल लौकिक रूप से भी उपकारी है और आध्यात्मिक रूप से भी। उसमें शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार की शक्तियाँ निहित हैं। इसलिए शिवजी स्वयं तो उन शक्तियों से सम्पन्न है ही जो लोग शिवजी और उनके त्रिशूल के उपासक है उनमें भी वे तीनों शक्तियाँ शनैः शनैः सहज रूप में समाविष्ट हो जाती हैं और तब उस साधक में भी महती सामर्थ्य उपलब्ध हो जाती है।

त्रिशूल के भौतिक और आध्यात्मिक दोनों पहलू हैं। वस्तुतः वह ओंकार का ही प्रतीक है। वैज्ञानिक दृष्टि से त्रिशूल ऐसी धातु से निर्मित है जो विद्युद्-प्रतिग्राहक होने के कारण बड़े-बड़े भवनों पर, ऊँचे प्रासादों और मन्दिर-शिखरों पर लगाया जाता है। इस प्रकार ऊपर लगाये गये त्रिशूल का सम्बन्ध अर्थ द्वारा पृथिवी से जोड़ दिया जाता है। उससे यह लाभ होता है कि यदि कभी आकाशीय विद्युत् उस क्षेत्र में गिरे तो त्रिशूल के आकर्षण के कारण उसी से होती हुई धरती में जा समाती है। इस कारण पूरा क्षेत्र ही आकाशीय विद्युत् के प्रभाव से सुरक्षित रहता है।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक फ्रेंकलिन ने इस विषय में पर्याप्त परीक्षण किये और यह माना कि ऊँची इमारतों पर इस प्रकार का त्रिशूल लगाने से समूचा क्षेत्र ही उस दैवी प्रकोप से बचा रह सकता है। यद्यपि भारतवर्ष में भवनों पर त्रिशूल लगाने की प्रथा प्राचीन काल में भी थी, फिर भी नये दृष्टिकोण से प्रकाश डालने के कारण आधुनिक समय में यह फ्रेंकलिन का वैज्ञानिक आविष्कार माना जाता है।

वेद में विद्युत् का सम्बन्ध रुद्र से जोड़ा दिखाई देता है, इसलिए त्रिशूल से भी विद्युत् का सम्बन्ध होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। योग-सन्ध्या और अथर्वशिरोपनिषद् में वर्णित ओंकार के जिन दस नामों

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



की व्याख्या की गई है, उनमें ओंकार का एक नाम 'विद्युत्' अथवा "वैद्युत्' भी है। इससे भी यह मानना अनुपयुक्त नहीं कि ओंकार का सम्बन्ध विद्युत् से है और त्रिशूल उसी ओंकार की त्रैमात्रिक अभिव्यक्ति है।

## जीवात्मा के तीन शरीर–

जीवात्मा को शरीर ग्रहण की शक्ति में उसके यह तीन शरीर ही मुख्य रूप से सहायक हैं। यह शरीर है—स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर। इनमें से स्थूल शरीर का निर्माण पृथिवी, जल अग्नि, वायु और आकाश इन पंचमहाभूतों के पंचीकरण से होता है। इसी शरीर में सत्-रज-तम की प्रधानता रहती है तथा शक्ति रूप में वात, पित्त, कफ अपना आधिपत्य जमाये रहते हैं। आयुर्वेद की मान्यता है कि शरीर की समस्त क्रिया इन तीन पर ही निर्भर है, यही शारीरिक स्वास्थ्य में मुख्य कारण हैं। इनमें से वात मुख्यतः प्राणवायु तथा अन्य वायुओं को सम रखता है, पित्त रक्त रूप में परिवर्तित होकर समस्त गतियों का कारण होता है, जिसका मुख्य केन्द्र हृदय ही है। कफ का कार्य स्थूल शरीर में स्निग्धता बनाये रखना और उसे शक्ति प्रदान करना है। इस प्रकार यह स्थूल शरीर वात, पित्त, कफ पर भी वहुत कुछ निर्भर है और यह तीनों ही दोष ओंकार की तीन मात्राओं से ही उत्पन्न होकर शरीर को साम्यावस्था में रख पाते हैं। इनके विकृत होने पर स्वास्थ्य में गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है। जब यह तीनों दोष एक साथ मिलकर प्रकुपित होते है तो जीवन को खतरे में डाल देते हैं।

स्थूल शरीर में ही अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय संज्ञक पाँच कोष हैं, जो आवरण रूप से माने जाते हैं। इसी शरीर में ग्यारह इन्द्रियाँ हैं, जिनके द्वारा सांसारिक विषयों के भोग प्राप्त

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



किये जाते हैं। यह इन्द्रियाँ ही मनुष्यों को कर्म-फल की आसक्ति वाला बना कर जन्म-मरण के बन्धन में घुमाने वाली होती हैं। यही इन्द्रियाँ सतोगुणी साधक को संसार-सागर से पार लगा सकती है।

इसी स्थूल शरीर के भीतर सूक्ष्म शरीर होता है। जीवन का अन्त होने पर जब स्थूल शरीर छूट जाता है तब भी सूक्ष्म शरीर साथ रहता है। वस्तुतः यह सूक्ष्म शरीर ही जीवात्मा के जन्म-जन्मान्तर का साथी है। इसमें पाँच ज्ञानेन्द्रिय नेत्र, श्रोत्र, घ्राण, त्वकु और रसना तथा पच तन्मात्राएँ रहती हैं। पंच प्राण—प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान तथा मन, बुद्धि, अहंकार और किये हुए शुभाशुभ कर्म भी रेखा रूप में अंकित रहते हैं। इन्हीं रेखाओं के आधार पर जीवात्मा विविध प्रकार की उच्च-नीच योनियों को प्राप्त होता है। वे योनियों तथा दुःख सुख आदि के भोग उन कर्मों के फल रूप में ही प्राप्त होते हैं।

इन दो शरीर के शरीरों के अतिरिक्त जो कारण शरीर है, वही सतत जाग्रत् शरीर है। जब प्राणी सुषुप्ति होते हैं तब यही शरीर जागा रहता है। सुषुप्तावस्था में भी शरीर का क्रियाशील—स्पन्दनशील बने रहना इस कारण शरीर पर ही निर्भर है। इस प्रकार यह तीन शरीर आत्मा के लिये बन्धन स्वरूप होते हैं। आत्मा इन तीनों शरीरों से परे है, किन्तु आत्मा इनके आकर्षण को प्राप्त हुआ व्यर्थ ही बन्धन में पड़ा रहता है। लोग उस बन्धन के निवारण का कुछ प्रयत्न नहीं करते। वे सदैव स्थूल शरीर के हित-चिन्तन में लगे रहते हैं, इसलिये उन्हें आत्मा के हित का कुछ ध्यान नहीं रहता। यदि आत्म-हित के लिये प्रयत्न किया जाय तो इन बन्धनों से सहज ही छुटकारा मिल सकता है।

महाभारत में आत्मज्ञानी जनक का एक वृत्तान्त मिलता है—उनका कथन है कि 'मैं जिस वैराग्यमयी बुद्धि को धारण किये हुए हूँ। उसके

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



विषय में बताता हूँ--मैं अपने लिये नाक से श्वास नहीं लेता, आँखों से नहीं देखता, मन का उपयोग भी अपने लाभ के लिये नहीं करता। इस प्रकार मेरे आँख, नाक, मन आदि मेरे वश में हैं।'

और जब हम इस प्रकार अपने नाक, कान, आँख, जीभ आदि को अपने वश में कर लेते हैं तो हमारी यात्रा का आरम्भ हो सकता है आत्मा-दर्शन के मार्ग पर। जब तक हम अपने को आत्म-हित की साधना में नहीं लगाते, तब तक जन्म-मरण के बन्धन से नहीं छूट सकते। इसके लिये आवश्यक होगा मन को स्थिर करना, मन के तीन प्रकार माने हैं विचारकों ने--सात्विक, राजसिक और तामसिक। जो सात्विक मन है वह मेधा, धृति, ज्ञान, क्षमा, दया, निस्पृहता, विनय, धर्ममयता, निस्पृहता, आस्तिकता, ईमानदारी, श्रेष्ठ कर्म, सदाचार आदि से युक्त रहता है। उसमें अधर्म भावना कभी आती ही नहीं। इस प्रकार श्रेष्ठ मन के यह लक्षण हैं।

राजसिक मन विवेक-रहित, ज्ञान-रहित, बुद्धि-रहित होता है। उसमें धैर्य की, क्षमा की, दया-भाव की कमी होती है। धर्म-परायणता के साथ स्वार्थ और असत्य भी जुड़ा रहता है। ईमानदारी का आवरण तो रहता है, किन्तु उसके भीतर डाँवाडोल स्थिति रहती है। वह शुभ कर्म की आड़ में अशुभ कर्म की प्रेरणा देता है। इसलिये कामुकता, क्रोध, अहिंसा आदि भावों की विद्यमानता रहती है। अहंकार भी अपने स्थान पर रहता हुआ मन को अपने साथ ही लगाये रहता है।

तामसिक मन में राजसिक दुर्गुणों की अधिकता रहती है। राजसिक मन में जो श्रेष्ठ गुण रहते भी हैं, तामसिक मन में उनका तो अभाव ही हो जाता है। ऐसा मन आलस्य, प्रमाद, अज्ञानादि के कारण मनुष्यों को अन्धकार में गिरने के लिये विवश करता है। शोक, भय, आशंका आदि का मुख्य कारण भी तामसिक मन ही है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



इस प्रकार मन की तीन गतियाँ भी त्रिशूल की गतियों से बहुत कुछ सम्बन्धित हैं। यदि अकार का साधन किया जाय तो मन को सात्विक बनाया जा सकता है। उकार का साधन किया जाय तो उसमें रजोगुण की वृद्धि हो सकती है। मकार के साधन से तमोगुण बढ़ सकता है, किन्तु सम्पूर्ण ओंकार का, शिवायुध रूप त्रिशूल का ध्यान किया जाता रहे निरन्तर तो उसके प्रभाव से त्रिपात नष्ट हो सकते हैं, सभी प्रकार के पापों का निवारण हो सकता है, और पापों का, तापों का निवारण होजाय तो साधक को सहज ही जन्म-मरण से छुटकारा मिल कर पूर्ण शिवत्व की, पूर्ण परमात्म-तत्व की प्राप्ति हो सकती है।

## ईश्वर के तीन रूप और त्रिमात्र ओंकार -

ज्ञानी पुरुषों ने ईश्वर के तीन रूप माने हैं—विश्व विश्वचर और विश्वातीत। यह विश्व उसी परब्रह्म की रचना है और ओंकार की प्रथम मात्रा अकार से व्यक्त हुआ है। किन्तु सामान्य प्राणी इस तथ्य से अनभिज्ञ हैं, वे नहीं जानते कि यह संसार अकार ही है। इसका अनुभव तो ज्ञानवान साधक ही कर पाते हैं। उन्हें संसार में जहाँ जो कुछ भी दिखाई देता है उस सभी में ईश्वर रूप के ही दर्शन होते हैं। ऐसे साधक सभी प्राणियों को आत्मवत् मान कर उनमें अकार भावना रखते हुए उकार और मकार से पार होते हुए पूण परमात्मा में लीन हो जाते हैं।

विश्वचर का तात्पर्य है गतिमान जीवों से। इस संसार में जितने भी जीव विचरण करते हैं, वे सब उसी के अंशभूत हैं। किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि जो अचर हैं वृक्ष, पर्वत आदि वे ब्रह्म रूप नहीं हैं। सभी पदार्थों में—अणु-अणु में एक मात्र वही ओंकार ब्रह्म समाया हुआ है। विश्व के परमाणु जिस धुरी पर घूम रहे हैं, उन सबका केन्द्र एकमात्र वही है। वही सबको घूमाता है और सभी उसके संकेत पर घूम रहे हैं। यह विश्वचर रूप उकार से सम्बन्धित है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant



विश्वातीत का तात्पर्य तो स्पष्ट है ही—ओंकार ब्रह्म इस सृष्टि का रचयिता तो है, उसमें व्याप्त भी है, किन्तु लिप्त नहीं है। वह विश्व में विद्यमान रहता हुआ भी उससे परे है। इस प्रकार परमात्मा के तीन रूप हैं और तीनों ही ओंकार की तीन मात्राओं से सम्बन्धित हैं। यह तीनों ही रूप त्रिशूल को भी अपना प्रतीक बनाये हुए हैं।

## साधना में श्रवण, मनन, निदिध्यासन—

साधना में साधकों के लिये श्रवण, मनन और निदिध्यासन बहुत उपयोगी साधन सिद्ध होते हैं। वस्तुतः यह भी त्रिमात्र ओंकार अथवा त्रिशूल रूप ही हैं। इन साधनों के द्वारा साधक आधिभौतिक, आधि-दैविक और आध्यात्मिक इन तीनों शूलों का निवारण सम्भव है। इसी-लिये कहा है—'त्रयोशूल निर्मूलनं शूलपाणिम्' अर्थात् 'शूलपाणी शंकर जब प्रसन्न होते हैं तब तीनों शूलों को निर्मूल कर देते हैं।' शास्त्र का ही वचन है—

शान्ति वैराग्य बोधाख्येस्मिभिरग्रैस्तपस्विभिः।
त्रिगुण त्रिपुर हन्ति त्रिशूलेन त्रिलोचनः॥

"समस्त प्रकार के भावावेशों से रहित होकर हृदय में साधक परम शान्त भाव एवं सभी लौकिक, पारलौकिक सुखोपभोगों के प्रति वैराग्य धारण करना और बोध (ज्ञान) संज्ञक अर्थात् ज्ञान स्वरूप इन तीन तपस्याओं के द्वारा सत्व, रज, तम—इन तीन गुण वाले त्रिपुरासुर का नाश करने में भगवान् त्रिनेत्र अपने हाथ में त्रिशूल धारण करते हैं। अथवा त्रिशूल से उस त्रिपुरासुर का वध करते हैं।

उक्त शास्त्र-वचन में जो 'त्रिपुर' शब्द आया है, वह भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। त्रिपुर का तात्पर्य उन तीन शरीर से है जो स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों के भेद से ऊपर कहे जा चुके हैं। यही तीन शरीर आत्मा के लिये बन्धन स्वरूप होकर उसे अशान्त, विषयों में प्रवृत्त और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



अज्ञानी बनाये रहते हैं। जब मनुष्य ओंकार साधना के द्वारा शान्तचित्त, अनासक्त और ज्ञानवान हो जाता है, तब उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।

## अर्धचन्द्रात्मक अर्धमात्रा—

शिवाजी के मस्तक पर अर्धचन्द्र रहता है, वह भी ओंकार—बिन्दु का प्रतीक है। इस मात्रा की साधना से साधक सभी वासनाओं वाले संसार से मुक्त होकर परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। प्रणवोपनिषद् में स्पष्ट रूप से कहा है—

तत्र देवास्त्रयः प्रोक्ता लोका वेदास्त्रयोऽग्नयः।
तिस्रो मात्रार्धमात्रा च प्रत्यक्षस्य शिवस्य तत् ॥

"ओंकार में तीन देवता (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) और तीन वेद (ऋग्, यजुः, साम) तथा तीन अग्नियाँ निहित कही जाती हैं। उसमें तीन मात्राओं के साथ अर्धमात्रा भी विद्यमान है, क्योंकि वह उस परम शिव तत्व का ही स्वरूप है।"

इस प्रकार ओंकार ही सर्वत्र है, वही सब कुछ है, उसी में समस्त विश्व ओतप्रोत है। इस सब तथ्यों पर विचार करते हुए तथा ओंकार की मात्राओं और कलाओं के सम्बन्ध में बोध प्राप्त करते हुए अर्थ-चिन्तन द्वारा आत्म-लाभ करना चाहिये।

और आत्म-लाभ के लिये आवश्यक है अपने आहार-विहार को सन्तुलित एवं नियन्त्रित करना—आहार भी सात्विक हो और दिनचर्या भी। जो कुछ भी किया जाय सभी में सात्विकता निहित हो, सभी में आत्म-विश्वास हो और अकर्त्तापन का भाव—साक्षी भाव हो। साक्षी भाव रहता है तो राजसी और तामसी गुणों का लोप स्वयमेव हो जाता है।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



## मृत्यु से अमृत की प्राप्ति–

योगियों ने मन को स्थिर बनाने के लिये अनेक उपायों का प्रावधान किया है। उन सबमें मुख्य है ध्यान। ध्यान के द्वारा मन भी स्थिर हो सकता है और आत्मा का दर्शन भी। शास्त्र का वचन है—'ओमित्येवं ध्यायाथात्मानम्' अर्थात् 'ओम् के ध्यान से ही आत्मा की प्राप्ति हो सकती है।

इसलिये आवश्यक है ओंकार का समग्र रूप में ध्यान जब हम किसी मूर्ति का ध्यान करते हैं तो उसके प्रत्येक अङ्ग, प्रत्येक अवयव, प्रत्येक वस्त्र और प्रत्येक अलंकार-आयुधादि का भी ध्यान करते हैं। यही नहीं, उसके वाहन तक का ध्यान किया जाता है। उसी प्रकार हमें ओंकार के प्रत्येक अक्षर पर, प्रत्येक मात्रा पर, प्रत्येक पाद पर विचार करना चाहिये। ब्रह्म-प्राप्ति का इससे उत्तम और सरल कोई उपाय नहीं है कि हम उसमें निहित सभी रहस्यों को समझें, जो कि अर्थ-चिन्तन से भले प्रकार समझ में आ सकता है।

इस तथ्य को पुनः समझें कि ओंकार ब्रह्म कला-रहित भी है और कला-सहित भी। कला-रहित रूप निराकार है और कला सहित रूप साकार। जब हम उसके सकल (कला-सहित) साकार रूप का ज्ञान प्राप्त कर लेंगे तब निष्कल (कला-रहित) प्रणव के ज्ञान में सरलता रहती है। इसीलिये मुण्डकोपनिषद् का कथन है—'तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः' अर्थात् 'उस निष्कल ब्रह्म का ही ध्यान करना चाहिये। वेद और उपनिषद् की मान्यता है कि अविद्या के मार्ग पर चल कर ही विद्या को प्राप्त करना सरल रहता है। यथा—

विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥

'विद्या और अविद्या दोनों का अनुभव करे, क्योंकि अविद्या का अनुभव करने पर ही उसके कष्टों का पता चलता है और उससे विरक्ति

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra



उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार अविद्या के द्वारा ही मृत्यु के पार करने पर अमृत की प्राप्ति होती है।"

उक्त निश्चय के साथ ही उस विषय को अधिक स्पष्ट करने की दृष्टि से कहा है—

सम्भूतिश्च विनाशश्च यस्तद्वेदोभयं सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्याऽमृतमश्नुते॥

'सम्भूति (उत्पत्ति) और विनाश इन दोनों के विषय में निश्चय करता हुआ मनुष्य विनाश के द्वारा मृत्यु से पार होकर अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार निष्कल ब्रह्म की प्राप्ति के लिये आवश्यक है कि पहिले कला-संयुक्त ब्रह्म का, मात्रिक प्रणव का आश्रय लिया जाय। मात्रिक प्रणव का पूर्णरूपेण अर्थ-चिन्तन करते हुए अभ्यास होजायगा प्रणव-ध्यान का और तब उसके मात्रिक रूप की अपेक्षा न रहेगी। निष्कल और अमात्रिक प्रणव की प्राप्ति स्वतः हो जायगी।

———

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

# विश्व ओंकार परिवार की स्थापना

ॐ परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ व स्वाभाविक नाम हैं। इसे मन्त्र शिरोमणि, मन्त्र सम्राट, मन्त्र राज, बीजमन्त्र और मन्त्रों का सेतु आदि उपाधियों से विभूषित किया जाता हैं। इसे श्रेष्ठतम् महानतम् और पवित्रतम् मन्त्र की संज्ञा भी दी जाती है। सारे विश्व में इसकी तुलना का कोई मन्त्र नहीं हैं। ॐ सभी मन्त्रों को अपनी शक्ति से प्रभावित करता है। सभी मन्त्रों की शक्ति ओंकार की ही शक्ति है। यह शक्ति और सिद्धिदाता हैं। भौतिक व आत्मिक उत्थान के लिए कोई भी दूसरी श्रेष्ठ व सरल साधना नहीं है।

सभी ऋषिमुनि ॐ की शक्ति और साधना से ही अपना आत्मिक उत्थान करते रहे हैं। परन्तु आज आश्चर्य है कि ॐ का अन्य मन्त्रों की तरह व्यापक प्रचार नहीं है। इस कमी का अनुभव करते हुए विश्व ओंकार परिवार की स्थापना की गई है। आप भी अपने यहाँ इसका एक प्रचार केन्द्र स्थापित करें। शाखा स्थापना का सारा साहित्य निःशुल्क रूप से प्रधान कार्यालय, बरेली से मँगवा लें, आपको केवल इतना करना है कि स्वयं ओंकारोपासना आरम्भ करके ४ अन्य मित्रों व सम्बन्धियों को प्रेरित करें और सभी संकल्प पत्र व शाखा स्थापना का प्रार्थना पत्र प्रधान कार्यालय को भिजवा दें। इस वर्ष २७००० साधकों द्वारा ६०० करोड़ मन्त्रों के जप का महापुरश्चरण पूर्ण किया जाना है। आशा है ओंकार को जन-जन का मन्त्र बनाने के इस श्रेष्ठतम् आध्यात्मिक महायज्ञ में सम्मिलित होकर महान् पुण्य के भागी बनेंगे।

विनीतः—

**संस्कृति संस्थान** **चमनलाल गौतम**

ख्वाजाकुतुब, वेदनगर, बरेली—२४३००३ (उ.प्र.)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

# एक मौन व्यक्तित्व का मौन समर्पण

---

डा० चमनलाल गौतम—एक व्यक्ति का नहीं वरन् ऐसे विशाल धार्मि संस्थान का नाम है जो सतत् २४ वर्षों से ऋषि प्रणीत आर्ष साहित्य के शो प्रकाशन और व्यापक साहित्य प्रचार का कार्य देश विदेश में करता रहा है यह उनकी तप साधना का ही परिणाम है कि किसी भी आर्थिक सहयोग बिना वेद, उपनिषद्, दर्शन, स्मृतियाँ, पुराण व मन्त्र-तन्त्र आदि साधनात्म साहित्य की ३०० से अधिक पुस्तकों को प्रकाशित करके घर-घर में पहुँच की पवित्रतम साधना कर रहें है। मन्त्र-तन्त्र, योग, वेदान्त व अन्य धार्मि विषयों पर १५० खोज पूर्ण ग्रन्थों का लेखन, सम्पादन एक ऐसा अविस्मरणी व असाधारण कार्य है जिस पर उनके अथक श्रम, गम्भीर अध्ययन त प्रतिभ और मौलिका सूझ-बूझ की स्पष्ट छाप दिखाई देती हैं। स्वस्थ याहि की रचना और प्रचार का उनकी जीवन योजना का यह पहला चरण पू हुआ।

पिछले २४ वर्षों से लगातार चल रही आध्यात्मिक साधना के महा पुश्चरण का दूसरा चरण भी समाप्त हो रहा है। तीसरे चरण आध्यात्मि साधनाओं और अनुभूतियों के विश्वव्यापी विस्तार का शुभारम्भ विश ओंकार परिवार की स्थापना के साथ बसन्तपञ्चमी की परम पवित्र बेला मे सम्थ हो गया है। अत: उनका शेष जीवन तीसरे चरण की सफलता ओंकार साधना में प्रविष्ट करके उच्च आध्यामिक भूमिका में प्रशस्त करन ओंकार अथवा उच्च आध्यात्मिक साहित्य की रचना व प्रचार-प्रसार को समर्पित है।

—स्वामी सत्य भक्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE

u Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.